महफ़िल

कथाकार, उपन्यासकार और 'कहानी-सम्पादक' श्री भैरव प्रसाद गुप्त के नाम से हिन्दी का हर सामान्य पाठक भली-भाँति परिचित है। गुप्त जी के उपन्यास—'मशाल,' 'शोले,' 'गंगा मैया' तथा 'ज़ंजीरें और नया आदमी'—आलोचकों तथा पाठकों से श्रेष्ठता और लोकप्रियता की सनद पा चुके हैं और उनकी दर्जनों कहानियाँ जन-जन के हृदय में जगह बना चुकी हैं।

हिन्दी कहानी पर गुप्त जी का अहसान दोहरा है। उन्होंने न केवल स्वयं बड़ी उच्च कोटि की कहानियाँ लिखी हैं, वरन् कहानीकारों की नयी पौध को कहानी लिखना भी सिखाया है। आज के अधिकांश कथाकारों की प्रथम कृतियाँ उन्हीं के हाथों सुधर-सँवरकर 'माया' या 'कहानी' के पन्नों में छपीं और लोकप्रिय हुईं। नये कथाकारों को अपनी कला का परिमार्जन करने में गुप्त जी ने वही सहायता दी, जो अपने वक्त में प्रेमचन्द और द्विवेदी जी ने दी थी।

गुप्त जी की कहानियाँ और उनकी वस्तु जीवन की विविधता और विशालता लिये हुए है—गाँव से शहर तक उसका विस्तार है और जन की सेवा उसका ध्येय है। गुप्त जी ने प्रेमचन्द से दूसरों ही का नहीं अपना भी पथ प्रशस्त करना सीखा। उनकी कहानियाँ कोरी कल्पना की उड़ानें नहीं, बल्कि ज़िन्दगी की धड़कनों से अनुप्राणित हैं और चाहे कला और शिल्प का कितना भी समावेश उनमें क्यों न हो, वे उपादेयता का दामन नहीं छोड़तीं।

महफ़िल—गुप्त जी की कहानियों का नया प्रतिनिधि संग्रह है और हमारे उपरोक्त कथन का समुचित प्रमाण है। शीघ्र ही हम गुप्त जी के दूसरे कहानी-संग्रह भी पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करेंगे।

महफ़िल

लोकप्रिय प्रगतिशील कथाकार भैरव प्रसाद गुप्त का यह नया संग्रह है। इस संग्रह में उनकी गाँव और शहर की दस प्रतिनिधि तथा श्रेष्ठ कहानियाँ हैं, जिनमें शिल्प-सौन्दर्य की ही नहीं, वस्तु की भी अपूर्व विविधता है।

गुप्त जी के बहुश्रुत उपन्यास 'गंगा मैया' की परम्परा में गाँव की ही भाव-भूमि पर निर्मित उनका नया लघु-उपन्यास 'सत्ती मैया का चौरा,' शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

महफ़िल

भैरव प्रसाद गुप्त

नी ला भ प्र का श न
प्रयाग

प्रकाशकीय

कथाकार, उपन्यासकार और 'कहानी' सम्पादक श्री भैरव प्रसाद गुप्त के नाम से हिन्दी का हर सामान्य पाठक भली भाँति परिचित है। गुप्त जी के उपन्यास, 'मशाल', 'शोले', 'गंगा मैया' तथा 'जंजीरें और नया आदमी' आलोचकों तथा पाठकों से श्रेष्ठता तथा लोकप्रियता की सनद पा चुके हैं और उनकी दर्जनों कहानियाँ जन-जन के मन में जगह बना चुकी हैं।

हिन्दी कहानी पर गुप्त जी का अहसान दोहरा है। उन्होंने न केवल स्वयं बड़ी उच्चकोटि की कहानियाँ लिखी हैं, वरन् कहानीकारों की नयी पौध को कहानी लिखना भी सिखाया है। आज के अधिकांश कथाकारों की प्रथम कृतियाँ उन्हीं के हाथों सुधर-सँवरकर 'माया' या 'कहानी' के पन्नों में छपीं और लोकप्रिय हुईं। नये कथाकारों को अपनी कला का परिमार्जन करने में गुप्त जी ने वही सहायता दी, जो अपने वक्त में प्रेमचन्द और द्विवेदी जी ने दी थी।

गुप्त जी की कहानियाँ और उनकी वस्तु जीवन की

विविधता और विशालता लिये हुए हैं, गाँव से शहर तक उसका विस्तार है और जनता की सेवा उसका ध्येय है। गुप्त जी ने प्रेमचन्द से दूसरों ही का नहीं अपना पथ प्रशस्त करना भी सीखा। उनकी कहानियाँ कोरी कल्पना की उड़ानें नहीं, बल्कि ज़िन्दगी की धड़कनों से अनुप्राणित हैं और चाहे कला और शिल्प का कितना भी समावेश उनमें क्यों न हो, वे उपादेयता का दामन नहीं छोड़तीं।

'**महफ़िल**' गुप्त जी की कहानियों का नया प्रतिनिधि संग्रह है और हमारे उपरोक्त कथन का समुचित प्रमाण है। शीघ्र ही हम गुप्त जी के दूसरे कहानी-संग्रह भी पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करेंगे।

क्रम

महफ़िल

घुरहुआ

यह नगरों और सिंहासनों के नहीं, एक गाँव के अलिखे इतिहास के एक नाचीज़ नायक की कहानी है। इतिहासकार बड़े होते हैं, उनके नायक और नायिकाएँ, पात्र और चरित्र महान होते हैं और उनकी अमर गाथाएँ बड़े-बड़े पोथों में सुरक्षित रहती हैं। यह दूसरी बात है कि बेचारे विद्यार्थी उन्हें घोख-घोखकर भी परीक्षा के बाद तत्काल भूल जाते हैं और आगे के जीवन में कभी भूले से भी उन्हें याद नहीं करते, और न कभी उन महान चरित-नायकों से कोई प्रेरणा ही प्राप्त करते हैं। इसके विरुद्ध गाँवों के साधारण चरित-नायकों को किसी इतिहासकार की आवश्यकता नहीं होती, वे अपने असाधारण गुण या अवगुण के बल पर ही सदा के लिए गाँववासियों के ओंठों पर बस जाते हैं और जीवन में सदा, यथाअवसर याद किये जाते हैं और प्रेरणा के अजस्र स्रोत बने रहते हैं। यहाँ बड़े या छोटे, ऊँचे या नीचे, धनी या ग़रीब, गुणी या अवगुणी, ब्राह्मण या चमार, किसी के प्रति कोई पक्षपात नहीं होता, यहाँ गुण या अवगुण में पारंगत को ही चरित-नायक की उपाधि मिलती है। बच्चों की घुट्टी में इनकी कहानियाँ डाली

जाती हैं, जवानों के सामने उनके दृष्टान्त दिये जाते हैं और बूढ़े उनकी व्याख्या कर गाँव की भलाई के लिए नतीजे निकालते हैं। ऐसा ही अपने गुण में पारंगत था घुरहुआ।

गाँवों में गँवार लोग मृत्यु की डीठ से अपने बच्चों को बचाने के लिए उनके ऐसे खराब नाम रखते हैं कि सुनकर ही अरुचि हो जाय। गँवार माताओं के लिए मनुष्यों की डीठ का भय अपने बच्चे की शिशुता तक ही सीमित रहती है, जिसे वे डिठौना लगाकर बचाती हैं, किन्तु मृत्यु की डीठ का भय तो आजीवन रहता है, सो माताएँ यह नाम का डिठौना जीवन-भर के लिए अपने बच्चों पर लगा देती हैं।

घुरहुआ....यह नाम सुनकर भी यही बात मन में उठ सकती है, किन्तु घुरहुआ तो इस गाँव में पैदा नहीं हुआ था। वह जवानी में इस गाँव में आया था, वह भी किस परिस्थिति में....

भोर का समय था। गरजन मेहतर की बूढ़ी औरत बग़ल में लुगरी दबाये गाँव के पोखरे पर पहुँची, तो वहाँ घाट पर बड़ी भीड़ लगी थी। पास जा देखने की तीव्र उत्सुकता के बावजूद जातिगत रीति के अनुसार ज़रा दूर ही खड़ी हो उसने एक औरत को पुकारा, "ए बहिनी!"

गरजन की औरत गाँव-भर में 'मिठबोलिया' करके मशहूर थी। उसकी बोली से जैसे मधु टपकता। छोटा हो या या बड़ा, कभी भी, किसी के लिए भी उसके मुँह से कोई कड़ी बात या कुशब्द किसी ने न सुना था। उसका यह अद्भुत गुण ही था कि जो भी सुनता, मुग्ध हो जाता था, कभी उसकी किसी बात पर कोई ना न करता। बड़े-बड़े लोग तो उसकी बोली का रस लेने के लिए ही उससे बेबात भी बात करते।

वह औरत पास आकर बोली, "कोई अनगौआँ सीढ़ी पर नंग-धड़ंग गिरा पड़ा है। मुँह से खून निकल रहा है, न बोलता है, न चालता।

"च-च-च !" छोह-भरे स्वर में गरजन की औरत बोली, "कोई उसकी जान-पहचान का नहीं है ?"

"ऊ-हूँ !....पूछा जाता है, तो गलगल आवाज करता है, बोल नहीं पाता। जाने कहाँ चोट लगी है। पानी भी मुसकिल से अन्दर जाता है।"

"हे राम !........तो लोग का सोच रहे हैं ?"

तभी भीड़ में से भिरगू ने पुकारकर कहा, "ए गरजन बो काकी ! तनी आके तो देख। तेरी बिरादरी का ही लगता है।"

फिर कई आवाज़ें आयीं,"हाँ-हाँ, देख तो, रे !"

आँखों में मोह का पानी भरे बुढ़िया आगे बढ़ी, तो छूत जाति-वालों ने उसका रास्ता ऐसे छोड़ दिया, जैसे वह गन्दे पानी की धारा हो। पास जा बुढ़िया ने झुककर देखा, काला-भुजंग, गैंडे की तरह गठे शरीर और मोटी चमड़ीवाला जवान चित पड़ा था। बड़े-बड़े धूल में अटे सिर के बाल बेजान-से चेहरे पर बिखरे थे। मूँछ के नाम पर पाँच-सात छोटे-छोटे बाल सुअर के बाल की तरह खड़े थे। उसी तरह ठुड्ढी पर भी पाँच-सात छोटे-छोटे बाल थे। आँखें कुच-कुची, नाक छोटी और चिपटी, ओंठ मोटे, जबड़ा चौड़ा, चट्टान की तरह छाती, मोटे-मोटे, पुष्ट हाथ-पाँव। कमर एक बेबँधे अँगोछे से ढँकी थी। आँखें मूँदे वह हाँफ रहा था।

बुढ़िया ने उसके माथे पर हाथ फेरकर पुकारा, तो जवान ने आँखें खोलीं और कदाचित बुढ़िया को देखकर ही लटपटाती आवाज़ में बोला, "मा !"

ममतामयी बृद्धा को लगा, जैसे किसी घायल बछड़े ने 'बा' किया हो। उसने उसका सिर उठाकर अपनी गोद में रख लिया।

भिरगू बोला, "तुझे पहचानता है का, रे ?"

आँखों में आँसू-भरे बुढ़िया बोली, "किसी जनम की पहिचान

जरूर होगी। इसने मुझे योंही मा नहीं कहा है। जाने कहाँ से भूला-भटका आज मेरी गोद में आ गिरा। इसे मेरे घर पहुँचा दो। जैसे मेरे चार बेटे, एक यह भी।"

पड़ोस से खटोला ला, उस पर लादकर दो जवानों ने आहत को गरजन के घर पहुँचा दिया। लड़के और बहुएँ काम पर निकल गये थे। बूढ़े गरजन ने देखा, तो हुक्का दीवार से टिकाकर बोला, "ई कौन है, कहाँ से उठा लायी?"

"राम जाने। पोखरे पर लावारिस पड़ा था। मुँह में कहीं चोट लगी है। दावा-बीरों से दो-चार दिन में अच्छा हो जायगा। फिर जहाँ का होगा, चला जायगा।"

"गाँव में इतने ठाकुर-महाजन हैं, तुझे ही का पड़ी थी? हम तो तुझ से परेसान हैं। कहीं बेटे बुरा मान गये....ई नहीं समझती।"

"सब समझती हूँ, लेकिन का करती। वहाँ सब ने पल्ला झाड़ दिया, तो का इसे चील-कौओं के लिए छोड़ देती? राम जाने, हमारे ही हाथ को जस लिखा हो। आओ, तनी इसका मुँह खोलके तो देखो, रिस-रिसके खून बह रहा है। ई भी किसी मा-बाप ही का बेटा है।"

बूढ़ा थोड़ा मौखिक विरोध भले ही कर ले, लेकिन ज़िन्दगी में कभी अपनी औरत की बात टाली हो, उसे याद नहीं। यह औरत ही ऐसी है, जो पहले तो कुछ कहती नहीं, लेकिन जब ज़बान हिला देती है, तो कोई भी उसकी बात नहीं टालता। घर की मालकिन अभी यही है। सब कमा-धमाकर जो भी लाते हैं, उसके हाथ पर धर देते हैं और गिरस्ती से छुट्टी पा जाते हैं। बहुएँ आठों पहर उसका मुँह जोहती हैं, बेटे जान देने को तैयार। लेकिन बूढ़ा अनुभवी है। जानता है कि बेटे अपने पाँवों पर खड़े हो गये हैं और वे स्वयं दोनों प्राणी बुढ़ापे से लाचार हो गये हैं। उनकी तरफ़ से अब कोई भी ऐसी बात न होनी

चाहिए, जो बेटों को नागवार ख़ातिर हो, कौन जाने कब भरम बिगड़ जाय। अपनी कमाई का दर्द किसे नहीं होता। सो, वह बहुत सँभलके रहता है और चाहता है कि बूढ़ी भी कभी ऐसा मौक़ा न आने दे।

गरजन आहत की ओर बढ़ा, तो बुढ़िया बोली, "तुम देखो, तब तक कहीं से थोड़ा दूध उपार लाऊँ।" और वह कटोरा उठा बाहर निकल गयी। गरजन ने उसके मुँह पर हाथ रखा, तो उसने आँखें खोलकर कबूतर की तरह उसे देखा। गरजन बोला, "तनी मुँह खोलो तो, देखें कहाँ से खून निकल रहा है।"

आहत ने मुँह ज़रा-सा खोलकर लटक-सी आयी जीभ की ओर उँगली से गूँगे की तरह संकेत किया। गरजन ने दोनों हाथों से उसका जबड़ा थोड़ा और फैलाकर देखा, तो जीभ जड़ से एक ओर उखड़ गयी थी। उसे सनाका हो गया। बोला, "तेरी जीभ तो उखड़ गयी है! ई कैसे हुआ?"

आहत की ख़ामोश आँखों से आँसू बह चले। उसने कुछ कहने का प्रयत्न किया, लेकिन लटपटाती आवाज़ में 'मा' से ज़्यादा कुछ न बोल सका। कष्ट में माँ से अधिक कौन याद आता है!

दूध लेकर बूढ़ी लौटी, तो गरजन से सब जानकर बोली, "हाय राम! ऐसा तो कभी देखा-सुना नहीं!" और फिर उसकी आँखें भर आयीं।

गरजन बोला, "मालूम देता है, किसी ने खींची है।"

"भला कौन निरदयी ऐसा कर सकता है?"

"कुछ बोलता तो पता चलता। ख़ैर, दूध में थोड़ी हल्दी डालकर दो उसको। भाग होगा, ठीक हो जायगा। मुँह के घाव पर कोई दावा-बीरो कैसे लगाया जायगा?"

ग़रीबों का राखनहार भगवान या प्रकृति है। विज्ञान ने जीवन-रक्षा के जितने बहुमूल्य साधन प्रस्तुत किये हैं, उन तक बेचारे गाँव के

ग़रीबों की पहुँच कहाँ ? जो-कुछ बन पड़ा, किया। और आहत चलने-फिरने लगा। उसकी जीभ ओंठों के दाहिने सिरे पर ज़रा-सी लटकी रहने लगी। लेकिन बोल न फूटा। बड़ी कोशिश कर कुछ शब्द वह गूँगों की तरह बोल पाता। इसलिए यह पता न लग सका कि वह कौन है, कहाँ का रहनेवाला है।

मज़बूत जवान था। किसी पर भी भार बनकर न रहता। चलने-लायक़ होते ही वह पूछ-पूछकर इधर-उधर के काम करने लगा। और एक दिन वह उस परिवार का ही एक अंग बन गया। बुढ़िया ने उसका नाम घुरहुआ रख दिया।

(२)

देखते-देखते घुरहुआ का महत्व मेहतर-परिवार की सीमा लाँघकर पूरे गाँव में फैल गया। वह लड़कों का खिलौना, जवानों का मसखरा और बूढ़ों, निर्बलों और औरतों का सहायक बन गया। जीभ का सन्तुलन बिगड़ जाने के कारण या जाने घायल होने की स्थिति में उसके शरीर की कौन-सी रग कहाँ खिंच गयी थी कि जब वह चलता, तो उसका बायाँ पाँव ज़रा टेढ़ा पड़ता। मुँह के बाहर कोने में निकली जीभ, हमेशा बहती रहती रहनेवाली लार, टेढ़ी चाल और गूँगों की तरह बातें लड़कों को आकर्षित करने के लिए पर्याप्त थीं। लड़के जहाँ भी उसे पाते, पीछे पड़ जाते, ताली बजाते, हँसते और कभी-कभी तो एकाध घूँसा भी जमा देते। भोला घुरहुआ बुरा न मानता, मज़ा लेता और हँसता, लेकिन जब घूँसा लगता, तो बच्चे की तरह 'मा-मा' चिल्लाने लगता। बूढ़ी कहीं पास होती, तो दौड़ी आती और लड़के उसके डर से चम्पत हो जाते।

जवान उसे जहाँ भी पाते, घेरकर बैठा लेते। पीने को बीड़ी देते,

हँसी-मज़ाक करते । घुरहुआ सब सुनता, समझता और हँसता ।

"ए घुरहू, बियाह करोगे ?"

घुरहुआ मुस्करा उठता ।

"वाह ! का मुस्की छूट रही है ! अबे, किसके साथ बियाह करेगा ? बता, तो इन्तजाम करें ।"

घुरहुआ ज़ोर से हँस पड़ता और भावों के आवेग में बोल पड़ता, "मा !"

सब क़हक़हा लगा उठते ।

"अरे, वो तो बिलकुल बूढ़ी हो गयी है !"

घुरहुआ मारने के लिए हाथ उठाता ।

"हम बतायें, उससे बियाह करेगा ?....ओ जो है न, मंगरा बो, अबे, उसे पटा ले !"

सब ज़ोर से हँसते और घुरहुआ जैसे शर्म से पानी-पानी हो सिर झुका लेता ।

"हम सब जानते हैं, बे ! यों ही तू गरजन के घर नहीं टिका है !"

घुरहुआ उठने को होता, तो उसे वे पकड़कर फिर बैठा लेते और एक और बीड़ी देते और तंग करते । बहुत देर बाद बुढ़िया खोजती-खोजती पहुँचती, तो बेचारे की जान बचती ।

होली-त्योहार में वे उसका स्वांग बनाते । कोई धोती देता, कोई कुरता, कोई टोपी; पहना-ओढ़ाकर उसका मुँह कालिख से पोत, उस पर चूने से लम्बी-लम्बी मूँछ और दाढ़ी बनाते, माथे पर सिन्दूर से त्रिपुण्ड निकालते और उसे गधे पर बैठाकर जुलूस निकालते, हो-हुल्लड़ करते ।

कहीं भी घुरहुआ किसी बूढ़े, निर्बल या औरत को कोई घास, लकड़ी, अनाज, डाँठ या किसी प्रकार का बोझ लिये जाते देखता, तो

लपककर उससे ले लेता और उसके घर पहुँचा देता। कोई भी काम करने के लिए उसे कोई बुलाता, तो वह कभी ना न करता और किसी भी तरह के मुआविज़े का तलबगार न होता। जो भी काम सामने आ जाता, उसमें जुट जाता। किसी की लकड़ियाँ चीर देता, किसी की क्यारियाँ बरा देता, किसी के खेत से ढोरों को हरका देता, किसी का पुर हाँक देता, किसी के यहाँ सानी-पानी कर देता। हाँ, उससे कहनेवाला कोई बूढ़ा, निर्बल या औरत होना चाहिए। जवानों और सबलों को यों भी किसी की मदद की आवश्यकता नहीं होती, फिर भी घुरहुआ को कोई कुछ करने को कहता, तो वह उसके शरीर की ओर संकेत कर ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगता, जिसका मतलब होता, तुझे शर्म नहीं आती ?

देखते-देखते ही हँसमुख, परिश्रमी, विनोदी, निरीह घुरहुआ की सराहना गाँव-भर में फैल गयी।

गरजन का घर गाँव के बीच में एक बड़े गढ़े के पास था। गढ़े में साल-भर पानी सड़ता और उसके किनारों पर चारों ओर के घरों से फेंका हुआ कूड़ा-कचरा। गरजन के घर के आस-पास की ज़मीन भी अछूत थी। उसमें उसने कुछ पेड़ लगा रखे थे और एक कुइयाँ खोद ली थी। गर्मी के दिन इन्हीं पेड़ों के नीचे कटते। घर क्या था, चार छोटी-छोटी मिट्टी की दीवारों पर खर-पात का छप्पर। एक बैल, ढेरों मुर्ग़े-मुर्ग़ियाँ। चार जवान बेटों में तीसरे और चौथे परदेस कमाते थे और बाक़ी दो खेती-बाड़ी करते थे। सुबह होते ही दोनों बेटे घुरहुआ को लेकर खेत पर चले जाते, चारों बहुएँ गिरस्ती कमाने निकल जातीं और बूढ़ा-बुढ़िया घर देखने, मुर्ग़े-मुर्ग़ियों को दाना डालने और दूसरे घरकाज करने के लिए रह जाते।

काम के बाद बेटे तो आराम करते, लेकिन घुरहुआ के लिए यही समय अपने सार्वजनिक कामों के लिए होता। वह गाँव में निकल

जाता और जहाँ जो पुकारता, उसका काम कर देता। घुरहुआ के मन में कोई स्वार्थ नहीं था। लेकिन अवसर पड़ने पर बुढ़िया इससे लाभ उठाती। कभी जब घर में खाने को न होता या कम होता, तो बुढ़िया घुरहुआ के हाथ में खोरा थमा देती और गाँव में घूम आने का संकेत करती। घुरहुआ को किसी से कुछ कहना न पड़ता। लोग आप ही समझ जाते और मिल-जुलकर उसका खोरा भर देते।

घुरहुआ भले ही परिवार का, गाँव का अंग हो गया हो, भले ही सब काम करता हो, फिर भी परिवार या गाँव के किसी भी आदमी को कभी भी उसके अधिकार या मान-प्रतिष्ठा का ख़याल न आता। उस पर सब अधिकार जता सकते थे, लेकिन उसका भी कुछ अधिकार है, यह कोई सोचता भी न था। मेहतर-परिवार का कोई भी सदस्य भीख न माँगता था, लेकिन घुरहुआ से यही काम कराने में उस परिवार की प्रतिष्ठा को कोई ठेस न लगती थी। हाँ, कभी-कभी ज़रूर गाँव के किसी कोने से और परिवार के एक निर्बल कण्ठ से यह दबी हुई आवाज़ उठती—बेचारा छाती फाड़कर काम करता है, फिर भी....

परिवार का यह कण्ठ मंगरा की औरत का होता। मंगरा सबसे छोटा बेटा था और एक साल पहले ही उसका ब्याह हुआ था। इस औरत पर जाने किस कुल की किस पीढ़ी के किस व्यक्ति की परछाईं पड़ी थी कि उसको देखकर अनायास ही मुँह से निकल जाता, कीचड़ में हीरा इसी को कहते हैं। सुन्दर बच्चे को कौन प्यार नहीं करता? माँ-बाप भी तो आखिर आदमी ही होते हैं। उसकी माँ ने जो-कुछ किया, वह स्वाभाविक ही था। लेकिन वही उसके प्रति घोर अत्याचार हो गया। वह मेहतरानी न बन सकी, गोकि उसे जीवन मेहतरानी का ही जीना था। उस माँ को क्या मालूम कि उसकी बेटी पर आज क्या गुज़रती है। ग़रीब की लुगाई, गाँव-भर की भौजाई! और दुर्भाग्य से वह औरत सुन्दर हुई, तो इस कहावत के 'भौजाई' शब्द की क्या

दुर्गति होगी, कहने की आवश्यकता नहीं। जब तक मंगरा घर पर रहता, उसे बाहर न निकलने देता। दस-पाँच दिन की छुट्टी की बात होती, कोई कुछ न कहता। कई बार उसे अपने साथ कलकत्ता ले जाने की बात भी मंगरा ने सोची थी, लेकिन हिम्मत न पड़ती। यहाँ तो इतने 'चौकीदार' हैं, वहाँ जब वह काम पर चला जायगा........जैसे ही वह छुट्टी बिताकर चला जाता, परिवार के सदस्यों में सन्तुलन ठीक रखने के लिए बेचारी के हाथ में फिर टोकरी और पंजा पकड़ा दिया जाता। और वह जैसे सभा में द्रौपदी की तरह चारों तरफ़ से निगाहों की बर्छियों और भालों और तलवारों से घिरी गिरस्ती कमाने निकलती। अन्दर-ही-अन्दर थर-थर काँपती, किसी ने किसी गली-अँतरे में उसका हाथ पकड़ लिया, तो ? अपनी माँ को वह रोज़ कोसती कि उसने उसे ऐसा नेक, नाज़ुक और कमज़ोर क्यों बना दिया। अपनी जेठानियों की तरह वह भी मज़बूत होती, तो इतना डर तो न लगता, मौक़ा पड़ने पर एक हाथ देख तो लेती।

लेकिन जब से घुरहुआ आ गया, उसे एक सहारा मिल गया। वह अक्सर गिरस्ती कमाने निकलती, तो उसे साथ ले लेती। और घुरहुआ भी जैसे कुछ समझकर ही देव की तरह उस पर साया किये रहता।

जवानों का मज़ाक यों‌ही नहीं था और घुरहुआ का मुस्कराना भी निरर्थक नहीं था !

मंगरा की औरत घुरहुआ का बड़ा ख़याल रखती। कोई ख़ास चीज़ होती, तो लुका-छिपाकर उसे खाने को दे देती, कभी-कभी उसके सिर में तेल डाल देती, उसकी भगई में साबुन लगा देती। घुरहुआ अपनी आँख के सामने उसे कुछ करने न देता। गगरी-डोर ले जाते उसे देखता, तो लपककर उसके हाथ से ले लेता, उसकी पारी के बरतन माँज देता, झाड़ू दे देता। जेठानियाँ मज़ाक करतीं, "अच्छा दूल्हा मिला है तुझे !" और घुरहुआ से कहतीं, "ज़रा इसका पैर भी

दबा दिया कर, रे !"—और हँसती निर्विकार हँसी। निरीह घुरहुआ के प्रति किसी प्रकार के विकार की कल्पना करना भी असम्भव था।

कभी-कभी मंगरा की औरत पाती कि घुरहुआ उसका मुँह एक टक निहार रहा है, तो मुस्कराकर पूछती, "का देख रहा है, रे ?"

घुरहुआ सिर नीचा कर खी....खी हँस पड़ता और लटकी जीभ से ढेर-सारी लार चू पड़ती।

मंगरा की औरत कभी-कभी पूछती, "घुरहू, हमें छोड़कर कहीं चले तो नहीं जाओगे ?"

घुरहुआ सिर हिलाकर 'मा-मा' कहता, मतलब होता, ना-ना, और उसकी आँखें चमक उठतीं।

लेकिन एक दिन ऐसा आया कि........

(३)

गर्मी के दिन थे। दोपहरी नाच रही थी। ऊख में पानी चल रहा था। दोनों बेटे पास के कुएँ पर ढेकुल खींच रहे थे और घुरहुआ क्यारी बराने पर तैनात था। चार पाँतियाँ हो चुकी थीं। आखिरी पाँत में बस तीन क्यारियाँ बाक़ी थीं। घुरहुआ कुदाल की बेंट पर ठुड्डी टिकाये मेंड़ पर बैठा क्यारी भरने का इन्तज़ार कर रहा था कि पास से ही एक ज़ोर की पुकार सुनायी दी, "अरे गोबरधन है का रे ?"

घुरहुआ को जैसे कोई बिसरी बात अचानक याद हो आयी। वह चिहुँककर उठ खड़ा हुआ। पुकार देनेवाला आँखों में आश्चर्य और हर्ष की चमक लिये दौड़कर पास आया, एक क्षण मुँह बाकर उसे देखा और दूसरे क्षण दोनों एक-दूसरे से लिपट गये और खुशी के आँसू उनकी आँखों से झरने लगे। आगन्तुक रुदन-भरे स्वर में कह रहा था, "हाय, हाय, रे गोबरधन ! कहाँ-कहाँ न ढूँढ़ा तुझे, रे !"

4179

रोते हुए ही घुरहुआ ने कहा, "मा !"

"मा तेरे लापता होने के तीन ही महीने बाद तेरा नाम ओंठों पर लिये-लिये चल बसी !"

दोनों फूट-फूटकर रो पड़े।

रुदन की आवाज़ कुएँ पर पहुँची, तो दोनों बेटे लपके आये। अजीब दृश्य था ! दोनों दो क्षण अबूझ-से निहारते रहे।

आगन्तुक आलिंगन छोड़, उबलती रुलाई को मुँह पर अँगोछी रखकर रोकता बोला, "ई हमार छोटा भाई है। साल-भर बाद मिला है। हमारे लिए मरकर जिया है।"

घुरहू ने भी एक आँख से रोते और दूसरी से हँसते कहा, "मा-मा !"

अबकी आगन्तुक के कान खड़े हुए। रुलाई एकदम बन्द हो गयी। बोला, "गोबरधन, तू ऐसे काहे बोल रहा है, रे ?"

दोनों बेटे साथ ही बोल पड़े, "ई बोलता कहाँ ? जब से यहाँ आया...."

"लेकिन पहिले तो ऐसी बात न थी, खूब बोलता था !" और अचानक वह फिर रोने लगा। बोला, "हाय रे जालिम ! तूने मेरे भाई को जिनगी-भर के लिए गूँगा बना दिया !"

"का मतलब ? किसी ने....आओ, पेड़ के नीचे चलें। बड़ी कड़ी धूप है।"

पास के झंगार बड़ के नीचे सब बैठ गये। आगन्तुक बोला, "हम नरहन गाँव के रहनेवाले हैं। यहाँ से नौ कोस पर होगा। लगान-मद्दे जमींदार का कुछ रुपया हम पर चढ़ गया था। उसी की भरपाई के लिए गोबरधन तीन महीने से उसके यहाँ चरवाही का काम कर रहा था। उस दिन बड़ी रात तक गोबरधन खाने न आया, तो उसे बुलाने गये। वहाँ वो न मिला। एक नौकर से पूछा, तो उसने अचरज से

से कहा, 'घर नहीं गया का? वो तो घड़ी पहले ही भाग गया था। जाने किस बात पर सरकार से कुछ कहा-सुनी हो गयी थी। सरकार ने उसे गाली देकर जबान बन्द करने के लिए कहा और जताया कि अगर एक लफ्ज भी मुँह से निकाला, तो जबान खींच लेंगे। सरकार का चिल्लाना सुनकर हम-सब आ गये। बेचारे गोवरधन का गरह खराब था। उसने एक ही बात कही कि जबान का खींच लेंगे?....कि सरकार भूखे भेड़िये की तरह उस पर झपट पड़े और उसकी छाती पर चढ़, उसका गलफरा फाड़ सच ही उसकी जीभ चुटकी से पकड़कर खींच ली। गोबरधन एक बार चीखा और फिर तड़पकर उठा और भाग खड़ा हुआ।'

घुरहुआ जीभ दिखाकर 'मा-मा' चीख पड़ा। दोनों बेटों के मुँह से निकला, "ओह!"

और फिर वहाँ गाँव के लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गयी। सारे गाँव में शोर हो गया कि घुरहुआ का भाई आया है। गरजन, बुढ़िया, सभी बहुएँ और अनगिनत बच्चे-बूढ़े, जिसने जहाँ सुना, सीधे भागा आया।

'घुरहुआ चला जायगा....घुरहुआ अब चला जायगा'....सब की ज़बान पर एक ही बात थी। लोगों को जब घुरहुआ पर हुए अत्याचार की बात मालूम हुई, तो ज़मींदार के प्रति ग़ुस्से, गालियों, कोसनों और श्रापों का ठिकाना न रहा, 'ऐसे गऊ आदमी पर ऐसा ज़ुलुम! मुआ कैसा कसाई है!...."

घुरहुआ चला जायगा, इसका बच्चों, जवानों, बूढ़ों, सबको अफ़-सोस था। गाँव का खिलौना, मसखरा, सहायक चला जायगा। गाँव कितना उदास, बेमज़ा और निस्सहाय हो जायगा। बस एक याद रह जायगी, एक था घुरहुआ....

मंगरा की औरत का दुख सबसे बड़ा था। उसका संरक्षक, हमदर्द

चला जायगा। फिर वही डर, वही बर्छियाँ, भाले और तलवारें....
उसकी आँखों से आँसू टपक रहे थे।

आगन्तुक ने आखिर कहा, "तुम लोगों के रिन से कभी उरिन न होंगे। भगवान तुम लोगों की वैसे ही रच्छा करेंगे, जैसे तुम लोगों ने मेरे असहाय भाई की की !....तुम लोग कौन हो, भाई ?"

"हम तो मेहतर हैं।"

"हे राम !" आगन्तुक के दिल की जैसे कोई रग चटख गयी।

"तुम लोग कौन हो, भाई ?"

"हम तो कोइरी हैं," और थोड़ी देर के लिए वह खामोश हो गया।

एक फुसफुसाहट सारी भीड़ पर तैरने लगी।

बुढ़िया आगे बढ़कर बोली, "ऐसे में जात-बिरादरी, धरम-करम नहीं बराया जाता, भैया ! जान बची लाखों पाये।"

"सो तो ठीक ही कहती हो, माई ! लेकिन बिरादरी कितनी जालिम है, यह तो जानती हो। खैर, हम भाई को लेकर कुजात भी रह लेंगे। तुम्हें बहुत-बहुत धनबाद, माई। हमारे लिए तुम मेहतर नहीं, मा हो। तुमने हमारे भाई की जान बचायी, भगवान तेरे बेटों को इसका बदला देगा।"

एक खुशी की चमक मंगरू की औरत की आँखों में बिरादरी की बात सुनकर आयी, लेकिन बाद की बात सुनकर उड़ गयी। अब ? क्या घुरहुआ सच ही चला जायगा ? उसकी आँखों में फिर आँसू भर आये ?

आगन्तुक ने कहा, "गोबरधन, माई के पाँव छू।"

बूढ़ी ने कहा, "खा-पीकर जायगा। ऐसी जल्दी काहे की है ?"

"अब जान-बूझकर मक्खी तो नहीं निगली जायगी," आगन्तुक ने कहा, "थोड़ा सत्तू हमारे पास है कहीं घोरके पी लेंगे।"

मंगरा की औरत का दिल तड़प उठा। तो का अभी चला जायगा, बिलकुल अभी? जाने क्यों उसे अभी एक आशा दिखायी पड़ रही थी। जाने कौन उसके मन में बैठा फुसफुसा रहा था कि वह कहेगी, तो शायद घुरहू न जाय, न जाय....लेकिन अब तो........

और सहसा मंगरा की औरत आगे बढ़ जाने कैसे-से कण्ठ से बोल पड़ी, "घुरहू!"

मदारी ने जैसे रीछ को आवाज़ दी हो। घुरहुआ ने अचकचाकर सिर उठाकर उसकी ओर देखा। मंगरा की औरत की पलकों में वे लटक रहे आँसू जाने क्या बोले कि घुरहुआ तड़पकर चीख उठा, "मा-मा!" मतलब था, ना-ना, मैं तुम्हें छोड़ कहीं नहीं जाऊँगा!

और यह क्या, घुरहुआ बच्चे की तरह बिलख-बिलखकर रोने लगा—ऊँ-ऊँ........

लोग अचरज में पड़ गये। बुढ़िया ने बहू के कन्धे पर हाथ रखकर आगन्तुक को समझाया, "यह हमारी बहू है, घुरहू को बहुत मानती है। बिना उसे खिलाये मुँह में कौर नहीं डालती।"

घुरहुआ ने बिलखते ही कहा, "मा-मा!" मतलब था, हाँ-हाँ।

जेठानियाँ हँस पड़ीं। एक बोली, "घुरहू ने तो जबान दी है कि वो हमारी देवरानी को छोड़कर कहीं नहीं जायगा। है न, घुरहू?"

घुरहुआ ने फिर कहा, "मा-मा!"

लोग हँस पड़े, वैसे ही, जैसे सिखाये जानवर को मालिक के हुक्म पर आदमी की तरह काम करते देखकर।

आगन्तुक ने मज़ाक को मज़ाक ही समझा। उठते हुए बूढ़ी से कहा, "अच्छा, माई, अब हमें हुकुम दो। तुम लोगों को हम जिनगी-भर न भूलेंगे। जब भी इधर आयेंगे, तुमसे जरूर मिलेंगे।"

बूढ़ी ने कहा, "हाँ, इसकी खबर देते रहना। इतने दिन हमारे यहाँ इसका दाना-पानी था, आज उठ गया। मन नहीं मानता,

लेकिन रोकें भी कैसे। भगवान इसे सुखी रखें! बराबर याद आयगी इसकी।"

आगन्तुक ने घुरहुआ का हाथ पकड़कर कहा, "चल, गोबरधन।"

मंगरा की औरत की पलकों में अटके आँसू चू पड़े। घुरहुआ ने काँपती आँखों से उसकी ओर देखा और अपना हाथ वैसे ही खींचने लगा, जैसे कि अजनबी हाथ में अपना पगहा देखकर बैल अपने खूँटे पर अड़ जाता है।

लोगों के दिल उत्सुकतावश धक-धक कर उठे।

घुरहुआ अपना हाथ छुड़ाकर मंगरा की औरत की ओर देखकर चीख पड़ा, "मा-मा!" जैसे अपने सवार की ओर देखकर बैल हुँकड़ा हो, बा-बा!

आगन्तुक ने फिर उसका हाथ पकड़ा, लेकिन घुरहुआ टस-से-मस न हुआ। उसने अपना हाथ फिर छुड़ा लिया।

लोगों ने जैसे कुछ समझ लिया और एक अद्‌भुत भाव सबके दिलों में चमक उठा।

बूढ़ी जैसे मातृत्व से उफनकर बोली, "नहीं चाहता, तो दो-चार दिन और छोड़ दो। समझा-बुझाकर हम खुद ही पहुँचा देंगे।"

आगन्तुक जैसे आसमान से ज़मीन पर आ रहा। चकित, हतप्रभ, अवाक्। यह वही उसका भाई गोबरधन है, जिसे उसने बाप के मरने पर बेटे की तरह पाला था, जिसकी जुदाई में वह साल-भर तक पानी से अलग हुई मछली की तरह तड़पा किया है। शर्म और गुस्से से उसकी गर्दन झुकी जा रही थी। उसने एक बार फिर कोशिश की, लेकिन कोई लाभ न हुआ। जैसे धरती ने घुरहुआ को पकड़ लिया हो।

एक हफ़्ता ठहरकर, सब कोशिशें करके, हार मान आगन्तुक लौट गया। गाँव और जवार में चर्चा का एक ही विषय था—अद्‌भुत!

अलौकिक ! ऐसा भी कहीं देखा-सुना गया है ! मंगरा की औरत ने कदाचित् कुछ कर दिया है, कौन जाने कुछ खिला-पिला दिया हो। लेकिन क्यों ? काहे को ? काला-कलूटा, आबनूस का कुन्दा, पागल, बेकार, बुद्धू, निरीह....

घुरहुआ की ओर से कोई भी कभी कुछ सोचने की आवश्यकता नहीं समझता। उसकी हस्ती ही क्या है। निरीह घुरहुआ के प्रति किसी भी प्रकार के विकार की कल्पना करना असम्भव था। वह इसके लायक़ ही नहीं था। फिर भी गाँव पर इस अलौकिक घटना का कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि बच्चों का वह खिलौना और भी आकर्षक हो गया, जवानों का वह मसखरा और भी मनोरंजक हो गया, बूढ़ों, निर्बलों और औरतों का वह मददगार और भी बेहतर हो गया।....

घुरहुआ के साथ मंगरा की औरत का नाम चल निकला। लेकिन मंगरा की औरत इसे तनिक भी बुरा न मानती। वह जानती थी, नाम लेनेवाले भी जानते थे कि इस बात में कोई बात नहीं। मज़ाक है, शुद्ध मज़ाक। मज़ाक में बुरा मानने की क्या ? हँस लो, हँसा लो।

एक बात और हुई। इस घटना के बाद मंगरा की औरत पर जिसकी नज़र न भी पड़नी चाहिए थी, उसकी भी पड़ने लगी। बाहर का भी कोई गाँव में आता, तो एक नज़र घुरहुआ और मंगरा की औरत को ज़रूर देखता। वे गाँव की दर्शनीय वस्तु बन गये।

मंगरा की औरत पहले कभी-कभी अकेली भी बाहर निकलती थी। लेकिन अब नाम नहीं लेती। जैसे उसका भय और भी बढ़ गया हो। बाहर घुरहुआ को हमेशा अपने साथ रखती।

जेठानियाँ मज़ाक करतीं, "अच्छा बन्दर पाल लिया !"

"तो तुम लोग भी पाल लो न !" ठुनकती हँसी के साथ मंगरा की औरत कहती, "कौन रोकता है ?"

"हमें कौन पूछेगा ?" कोई एक कहती, "न तेरी-जैसी चिकनी

हैं, न जवान !"

"तो बैठकर अपने भाग को रोओ, दूसरे पर जलती काहे को हो ?"

"हाँ, री....जलेंगी काहे नहीं ?" दूसरी कहती, "तेरे घुरहुआ-जैसा मरद का तीनों लोक में ढूँढ़ने पर मिलेगा !" और सब हँस पड़तीं।

इन्हीं क़हक़हों, हँसियों और मुस्कराहटों में एक साल बीत गया। इस बीच भी घुरहुआ का भाई कई बार आया और नामुराद लौट गया।

और फिर अचानक घुरहुआ के जीवन में एक दिन ऐसा आया कि फिर उसके लिए सूरज न निकला।

(४)

आधा बैसाख बीत चुका था। एक दिन बढ़िया पुरवाई बह रही थी। बहुत सवेरे सभी जाग उठे। बूढ़े-बूढ़ी खलिहानों में जवरा वसूल करने निकल गये। बेटे ओसावन का हरबा-हथियार ले घुरहुआ को ले निकले कि मंगरा की औरत बोली, "घुरहू एक घड़ी बाद चला जायगा !"

"काहे ?" बड़का बिगड़कर बोला, "तूने टोक दिया न, छोटकी ? दस दिन के बाद तो आज जरा कायदे की हवा चली है। इसका भी का भरोसा, अन्धड़ उठ गया, तो सब पड़ा रह जायगा। तुम-सब भी जल्दी कमा-धमाकर खलिहान आ जाओ। साथ में रस-पानी लेते आना, दोपहर तक भी मौका मिल गया, तो आधा पार लगा देंगे।"

"घुरहू हमारे साथ ही आ जायगा," मंगरा की औरत ने सिर झुकाकर कहा।

"नहीं !" और बड़के ने घुरहुआ का हाथ पकड़कर खींचा,

"चल बे, जल्दी कर !"

घुरहुआ मंगरा की औरत की ओर करुणा और विवशता-भरी आँखों से देखता चीखा, "मा-मा !"

लेकिन उन्होंने छोड़ा नहीं। उसे घसीटते हुए चल पड़े।

मंगरा की औरत रुआँसी हो गयी। जेठानियों ने आकर उसे डाँटा, "काहे को टोक दिया, रे छोटकी ? तुझे इतना भी खियाल नहीं ! कहीं कुछ हुआ तो तेरे ही सिर पड़ेगा !"

"हम तो अकेले कमाने नहीं जायेंगे !" ठुनककर मंगरा की औरत बोली, "आँख से देखकर भी कोई कुछ नहीं समझता !"

"ऐसा कोई बाघ नहीं बैठा है कि तुझे निगल जायगा ! चल, उठा टोकरी, जल्दी लौटना, खलिहान को बुला गया है न !"

"कोई बाघ निगल जाता, तो संताप ही छूट जाता !" रोकर मंगरा की औरत बोली, "हमें बाघ का कोई डर नहीं, डर उस जमींदार का है, जो जब भी सामने पड़ जाता है, ऐसे घूरके देखता है कि रोंआँ-रोंआँ काँप उठता है। हम सब जगह कमा लेंगे, लेकिन जमींदार के यहाँ अकेले कभी न जायेंगे। न हो, तुम्हीं-कोई आज उसके यहाँ कमा आओ।"

"ठेंगा जाता है हमारा !" चमककर बड़की बोली, "हम तो जाती हैं ! अब तुम समझो और तुम्हारा काम !" और सब-की-सब धम-धम पाँव रखती चली गयीं।

काम के बारे में दयादिनों में बड़ी लाग-डाँट चलती है। जो काम जिसके ज़िम्मे लग गया, जैसे भी हो, उसे ही करना पड़ता है, इसमें कोई रू-रियायत नहीं बरती जाती। गाँव में मुश्किल से ज़नाने-मरदाने मिलाकर कुल चालीस घरों में पैखाने होंगे, ज़मींदारों, महाजनों और नौकरीपेशा कायस्थों के यहाँ। मेहतर एक ही घर था। चारों बहुओं में बराबर-बराबर घर बँटे थे। जो ज़मींदार मंगरू की औरत के हिस्से

पड़ा था, वह अपनी बदकारियों के लिए गाँव में सबसे ज़्यादा मशहूर था। उसके कितने ही क़िस्से प्रचलित थे।

मंगरा की औरत बड़ी देर तक असमंजस में पड़ी रही। एक बार तो उसके जी में आया कि लूगा-फाटा उठा मैके की राह ले। ज़रा-सी बात कोई उसकी नहीं मानता। कहीं कुछ हो जाय, तो जिनगी हमेसा के लिए खराब हो जाय। लेकिन मछली की वह कहानी याद कर उसकी हिम्मत छूट गयी। एक बार वह बिना किसी से कुछ कहे-सुने रूठकर मैके चली गयी थी। इस पर उसके मरद ने उसे ऐसा-ऐसा पीटा कि तीन दिन तक हल्दी-गुड़ पीना पड़ा। बड़का बड़ा सख्त है। कोई सिकायत उसके पास पहुँच गयी, तो कच्चा चबा जायगा। वो है नहीं कि किसी को कुछ लिहाज भी हो। आखिर यह तय कर कि जमींदार के यहाँ वह धुरहुआ के आ जाने पर दूसरी बेला कमा लेगी, उसने दरवाज़े में कुंडी लगायी और बाहर दीवार से टँगी अपनी टोकरी और पंजा उठाया। तभी ज़मींदार के यहाँ का आदमी आ बोला, "चल जल्दी, सरकार इन्तजार कर रहे हैं। आज बड़ी देर लगा दी। बहुत बिगड़ रहे हैं।"

मंगरू की औरत को सनाका हो गया। उसका दिल काँप उठा—हे भगवान! आज का होनेवाला है, कोई तदबीर कारगर नहीं होती!....

गाँव की गलियों में सन्नाटा छाया हुआ था। गाँव की पूरी ज़िन्दगी निचुड़कर खलिहानों में जा बसी थी। दस दिनों के बाद आज ओसावन शुरू हुई थी। किसान, किसानिनें और खेतिहर मज़दूर ओसावन में जुटे थे। महाजन और ज़मींदारों के कारिन्दे गिद्ध की तरह चारों ओर मँडरा रहे थे और पवनी-परास बकुलों की तरह गल्लों से दूर बैठे टाही लगाये हुए थे।

उस दिन बड़ी रात गये गाँव के लिए शाम हुई। बड़ी रात तक

बढ़िया हवा चलती रही। उजेली रात थी। किसान ओसावन में जुटे रहे। आखिर जब हवा बिलकुल पट पड़ गयी, तो वे सिर पर अनाज के बोझ उठा गाँव की ओर चले।

बड़का कई बार पूछ चुका था कि छोटकी अभी तक नहीं आयी। बहुओं ने ठुनककर कहा था, "साइत वो नाराज हो गयी....ऊँह ! कौन उसके इतने चोंचले बरदास्त करे ? काम पियारा होता है, चाम नहीं !"

घर पहुँचे तो थकावट से चूर हुए मर्द पेड़ के नीचे धरती पर ही पसर गये। औरतों ने सोचा था, और कुछ नहीं, तो छोटको ने रोटी तो ठोंक रखी होगी। लेकिन यहाँ तो घर में अँधियारा छाया हुआ था। दरवाज़ा दोनों पट खुला हुआ था। ख़याल आया कि शायद पो-पकाकर छोटकी इन्तजार करते-करते थककर सो गयी है। लेकिन अन्दर तो कोई चिन्ह नहीं था। चूल्हा ठंडा पड़ा हुआ था। बड़की ने कई बार छोटकी को आवाज़ दी, लेकिन कोई जवाब न मिला। आखिर तेल की कुप्पी जलायी गयी, तो सब ने देखा, एक कोने में छोटकी ठेहुनों में सिर डाले नुची मुर्ग़ी की तरह संज्ञाहीन-सी बैठी थी।

तमककर एक बोली, "अइसे का बैठा है, रे ? तुझे ई भी खियाल न रहा कि मरद-मानुख दिन-भर मर-खपकर आयेंगे, जरा रोटी ही पो लें ?"

बड़की लपककर अपने मर्द के पास पहुँची, "चलो, देखो, अपनी लाडली को ! यह भी न हुआ कि घर पर है, तो...."

"जा भी, जरा चिलम भरके दे, तो पोखरे से नहा आयें। इस बखत कोई कर-कर किया, तो जानती है न ?" उसे थकावट के मारे ग़ुस्से की भी ताब न रही थी।

बड़की ने हट जाने में ही ख़ैरियत समझी। वह जानती थी कि ऐसे में और किसी पर पड़े या न पड़े, उस पर बेभाव की पड़ जायगी।

बूढ़ी और बूढ़े अभी नहीं लौटे थे, इसलिए बहुएँ शेर बनी थीं। उनकी बातें न सही गयीं, तो मंगरू की औरत घर से बाहर निकल

सहन में आ वैसे ही बैठ गयी गुमसुम ।

चिलम पीकर बेटे पोखरे नहाने चले गये । वे घुरहुआ को भी ले जाना चाहते थे, लेकिन वह न गया । बहुएँ बड़बड़ाती हुई चूल्हे-चौके में लग गयीं ।

हवा चलते-चलते थककर जैसे कहीं सो गयी थी । देह से तर-तर पसीना चू रहा था । अँजोरिया डूब चुकी थी । अन्धकार भारी-भारी लग रहा था ।

घुरहुआ ऐसे सिर लटकाकर बैठा था, जैसे उसने कोई बड़ा अपराध किया हो । मन जाने कैसे भावों में उमड़ रहा था, आँखों में जाने कैसी कचोटती हुई खामोशी थी । रह-रहकर कुएँ के पास बैठी मंगरू की औरत को जाने किस आशा से वह देख लेता था । आख़िर जब बहुत देर तक उस बुत में कोई हरकत न हुई, तो वह उठा और उसकी ओर ऐसे सहमे हुए बढ़ा, जैसे कोई बच्चा अपनी ग़ुस्सा हुई माँ के पास जाता है । वह पास जाकर खड़ा हो गया, फिर भी बुत ने सिर न उठाया, तो वह एक बेज़बान बालक की तरह तड़प, चीख उठा, "मा-मा !"

जाने कितनी देर बाद पहली बार मंगरू की औरत ने अपनी भरी हुई आँखें उठायीं ।

घुरहुआ की भौंहों में फँसे हुए तिनके जुगनुओं की तरह चमक उठे । वह भर्रायी हुई आवाज़ में बोला, "मा-मा !"

"हाय, मैं लुट गयी, घुरहू !" और मंगरा की औरत ने बिलखकर अपना सिर झुका लिया ।

घुरहुआ बैठकर बेवक़ूफ़ बालक की तरह 'मा-मा' करता रहा, लेकिन मंगरा की औरत जो फिर अपनी अँधेरी खोह में घुसी, तो उसे किसी बात का खयाल न रहा ।

जाने कौन-सी गंध गाँव में पाकर कई जवान कई बार आये और

मर्दों को पूछकर चले गये। दूर कुएँ पर बैठे उन दो प्राणियों को इसकी खबर भी न हुई।

बूढ़ा और बूढ़ी लौटे, तो एक बार फिर बहुओं ने लाई लगाने की कोशिश की। लेकिन वे ऐसे थककर चूर थे कि बात मुँह से न निकलती थी। बूढ़ा हुक्का ले एक ओर पड़ गया और बूढ़ी दरवाज़े का अवलम्ब ले उठंग गयी।

मर्द खा-पी चुके, तो औरतों की बारी आयी। बड़ी देर हो गयी थी। बहुएँ बेहद चिड़चिड़ी हो गयी थीं, उनकी देह तो जैसे पत्थर है! बड़की चिढ़कर बोली, "अब रानीजी को कौन मनाने जाय?"

बूढ़ी आह-ऊह कर बोली, "कहाँ है वो? जा, बुला ला।" और उसने कौर उठाया।

"मेरा तो ठेंगा जाता है!" अँगूठा दिखाकर, चमककर बड़की बोली और अपनी थाली खींचकर बैठ गयी।

बूढ़ी ने उसकी ओर आँखें तरेरकर देखा, लेकिन जैसे बात बढ़ाने की हूब उसमें बिलकुल न थी। मँझली से बोली, "जा रे, तू उसे बुला ला। जाने कइसे एक को छोड़कर इसके मुँह में कौर पड़ता है! घुरहुआ को भी लेती आना।"

मँझली सास का लेहाज़ ज़्यादा करती थी, बड़की की तरह उसका मुँह अभी खुला न था। लेकिन वह छोटकी से आज कम फिरंट न थी। सास की बात मान गयी और छोटकी का मुँह छूकर चली आयी। घुरहुआ को पूछने की उसने ज़रूरत भी न समझी। आकर बताया कि वह अभी न खायगी, कहती है, तुम सब खा-पीकर सोओ, हम घुरहुआ के साथ बाद में खा लेंगे।

और कोई समय होता, तो बूढ़ी खुद उसे मनाने जाती। लेकिन आज तो थकान के मारे कौर उठाना भी पहाड़ हो रहा था।

सब जहाँ-तहाँ पड़के नींद में बेखबर हो गये।

थकान से चूर पूरा गाँव बेहोश पड़ा था। गहरी-गहरी साँसों के सिवा कुछ सुनायी नहीं पड़ता था। हवा पट थी, और तर-तर चलने वाले पसीने तक का होश किसी को न था।

कई बार घुरहुआ ने मंगरा की औरत को संकेत कर कहा, "मा-मा!" न जाने उन दो अक्षरों के माध्यम से वह उससे क्या-क्या कहना चाहता था! लेकिन मंगरा की औरत अपने ही ऊहा-पोह में जकड़ी खामोश बनी रही। माँ के दुख को जैसे न समझ बालक सिर्फ़ रोता है और रोकर ही माँ के प्रति अपनी चिन्ता और सहानुभूति प्रकट करता है, घुरहुआ 'मा-मा' कर शायद वही करता था। और माँ बेवकूफ़ बालक को क्या समझाये, सो मंगरा की औरत खामोश रहती। फिर भी वह पुकारता, तो उसकी मूक व्यथा से प्रभावित हो, वह जाने कैसे विह्वल हो उसकी ओर एक नज़र देख लेती।

दिन-भर के कड़े परिश्रम से बोझल घुरहुआ की आँखें बड़ी देर तक नींद का भार अपनी पलकों पर सँभाले रहीं। लेकिन धीरे-धीरे आसमान के तारे उसके अनजाने ही मद्धम पड़ने लगे और घुरहुआ को ऐसी ज़ोर की झपकी आयी कि वह लुढ़ककर खर्राटे लेने लगा।

मंगरा की औरत के सामने की जैसे आखिरी बाधा भी दूर हो गयी। वह अब बिलकुल अकेली हो गयी। उस हालत में, ज़मींदार के घर से लौटने के बाद, उसको बस एक ही रास्ता सूझ रहा था। दिन के उजाले और दूसरों की उपस्थिति में एक भय से वह उस रास्ते से कतरा रही थी। लेकिन अब कोई भय न था। वह रास्ता नदी की धार की तरह उसकी आँखों के सामने चमक रहा था। यही एक रास्ता है। उसे एक बार फिर अपनी माँ पर ग़ुस्सा आया, उसने क्यों उसे ऐसा बना दिया? उसकी बिरादरी की औरतें, उसकी जेठनियाँ किससे नहीं बोलती-हँसतीं! लेकिन एक हम हैं! यह मुँह अब कैसे दिखाया जायगा?........गाँव में हल्ला हो जायगा। यह आँखें कैसे उठायी

जायँगी ?........नहीं, नहीं, एक ही रास्ता है। बेचारा घुरहुआ ! जाने किस मोह से हमें इतना मानता है ! आज खाया-पिया भी नहीं। हमारे साथ सती होने को तैयार है। भगवान इसे सुखी रखें !........वह उठी और जैसे एक ग़ार ने उसके सामने अपना मुँह खोल दिया। वह कुएँ में सीधी कूद पड़ी।

ज़ोर की छपाक की आवाज़ हुई। बच्चे की तरह चिहुँककर घुरहुआ की आँखें खुल गयीं। चिहा-चिहाकर उसने इधर-उधर देखा और फिर चीख उठा, "मा-मा-मा-मा-मा........"

"का है, ए घुरहुआ ?" बड़का बिगड़कर बोला।

घुरहुआ और भी ज़ोर से पुक्का फाड़कर चीखा, "मा-मा !"

औरतों को सनाका हो गया। औरतों के दिल में शंका बहुत जल्द पैदा होती है। बूढ़ी के साथ तीनों कुएँ पर लपकीं।

घुरहुआ आग में घिरे खूँटे से बँधे जानवर की तरह चीखे जा रहा था, "मा-मा-मा........"

"छोटकी कहाँ है रे ?" बूढ़ी ने शंकित हो पूछा।

घुरहुआ कुएँ की ओर संकेत कर चीखा, "मा-मा !"

जेठानियाँ पुक्का फाड़कर रो उठीं। बूढ़ी हाय-हाय का शोर मचा बेटों को पुकारने लगी, "दौड़ो-दौड़ो ! छोटकी कुएँ में कूद पड़ी !"

सब भागे आये।

बूढ़ा बोला, "जल्दी डोर लाओ !"

घुरहुआ का जैसे दम निकल रहा था, वह चीखे जा रहा था, "मा-मा !"

बड़का बोला, "इस अँधेरे में डोर लाकर का होगा? कुएँ में भगाड़ है, किसी का कोई पता लगेगा ?"

शोर सुनकर पास-पड़ोस के लोग भी जमा हो गये। कुआँ खतरनाक है, क्या किया जाय, किसी की समझ में न आ रहा था। एक

ने सुझाया, लालटेन बाँधकर नीचे लटकाकर देखो, कुछ दिखायी पड़े, तो कोई उतरे।

घुरहुआ चीख़े जा रहा था, "मा-मा !" उसकी समझ में यह न आ रहा था कि लोग इतनी देर क्यों कर रहे हैं ?

जब उसकी चीख न सही गयी, तो बड़के ने उसे ज़ोर का एक थप्पड़ लगाया और डाँटा, "का मा-मा चीख रहा है, बे मा के ? तुझे ही सबसे जियादा दर्द है, तो चल न कूद !"

घुरहुआ बिलबिलाकर और भी ज़ोर से चीख पड़ा, "मा !.... मा !" और फिर जैसे बड़के की ललकार को एक छन तक समझने का प्रयत्न किया और दूसरे ही छन कुएँ में कूद पड़ा।

*

इस गाँव से होकर सुबह की हवा जहाँ-जहाँ पहुँची, घुरहुआ का समाचार प्रसारित कर दिया।

दो अर्थियों के पीछे वह भीड़ चली, जैसी जवार में कभी भी किसी ने न देखी थी। हर ज़बान पर घुरहुआ का नाम था, हर आँख में घुरहुआ के लिए आँसू।

एक ज़माना बीत गया। लेकिन घुरहुआ का नाम गाँव के अलिखे इतिहास में आज भी सुरक्षित है।

आज भी बूढ़े कहते हैं—

एक था घुरहुआ........

◆

आया

मेरी परेशानी दिन-दिन बढ़ती जाती थी। बिलकुल साँप-छुँछूदर की गति थी। न निगलते बने, न उगलते।

क़रीब एक साल से यह आया मेरे यहाँ काम करती आ रही थी। कभी मुझे किसी शिकायत का मौक़ा मिला हो, याद नहीं। गर्मी हो, बरसात हो, जाड़ा हो, हर मौसम में उसके आने-जाने का समय एक ही रहा। मेरे दफ़्तर के वक्त पर जैसे मौसम का कभी कोई असर नहीं पड़ता, वैसे ही उस पर भी। जैसे मैं अपने दफ़्तर के वक्त का पाबन्द, वैसे ही वह भी अपनी ड्यूटी पर चुस्त। मजाल है कि कभी खाना तैयार होने में दस-पाँच मिनट की भी देर हो जाय!

यों सुबह-शाम खाना बनाने का ही वह मेरे यहाँ काम करती थी। लेकिन जैसे ही वह आयी, उसने घर का पूरा काम ही सँभाल लिया। अकेला आदमी था। वह भी कुछ लेखक-क़िस्म का। दो-चार रोज़ जैसे ही सामान-वमान की कमी पड़ी कि उसने सब-कुछ अपने हाथ में ले लिया। सौदा-सुलुफ़, राशन-फाशन, सब चीज़ों से बेफ़िक्र हो मैंने आराम की साँस ली।

शुरू-शुरू में तो कुछ दिनों तक पूरा बनिया बनकर उससे ख़ूब चौकस हिसाब-किताब लिया। हिसाब में जब एक-दो पैसे की कमी पड़ जाती, तो मैं कहता, "दो पैसे लाओ !"

इस पर वह मुस्कराती हुई हाथ की चुटकी आगे बढ़ा देती और कहती, "इतने की चोरिन तो मैं हमेशा रहूँगी, बाबूजी !"

उसकी चुटकी में दो पान देखकर मैं शरमा जाता।

धीरे-धीरे उसके खरेपन की धाक मुझ पर कुछ ऐसे जम गयी कि एक छन के लिए अपने पर तो अविश्वास हो सकता था, पर उस पर नहीं। ऐसी खरे व्यवहार की आया का ज़िक्र मेरे दोस्त सुनते, तो आश्चर्य करते। असम्भव ! लेकिन मैं तो अपने भाग्य को सराहता। वर्ना मेरे-जैसे दुनियादारी में कच्चे, भावुक आदमी....

वह ग्यारह बच्चों को अपने शरीर का ख़ून पिला चुकी थी। नौ ज़िन्दा थे। दो मर चुके थे। मरनेवालों में उसका पहलवठी का बेटा भी था। कभी-कभी आँखों में आँसू भरके वह उसका ज़िक्र करती। कहती, "वह ज़िन्दा रहता, बाबूजी, तो आज आप ही के बराबर होता। बिलकुल आप ही का चेहरा-मोहरा था, बाबूजी !" और उसकी आवाज़ भर्रा जाती। उस वक्त उससे आँख मिलाते न बनता। और वह भी आँचल से आँखें ढँके रसोई में चली जाती। वहाँ से उसकी सिसकियाँ काफ़ी देर तक सुनायी पड़तीं। मैं उदास हो जाता। हृदय में न जाने क्यों उठता, 'कहीं यह बूढ़ी अपने मरे बेटे का रूप तो मुझमें नहीं देखती ?' और उसके वह सच्चे व्यवहार जैसे चीख़-चीख़कर मेरे कानों में गुँजा देते, 'हाँ, हाँ, शायद !'

वह कई बार कह चुकी थी कि उसका आदमी और तीन कमासुत बेटे यह नहीं चाहते कि अब वह नौकरी करे। आख़िरी बच्चे के बाद उसकी तन्दुरुस्ती ऐसी नहीं रही। लेकिन वह कहती, "अभी से जांगर तोड़के बैठ जाऊँ ?....बाबूजी, आपके यहाँ काम करने में अहस नहीं

लगता। जब तक आप नहीं निकालेंगे, बनी रहूँगी। उनके कहने से क्या होता है ? आपको मैं छोड़ूँगी नहीं, बाबूजी !"

उसे क्या मालूम कि मैं खुद उसे छोड़ न सकता था। ऐसी आया क्या सबके भाग्य में होती है, जो बेटे की तरह....कितना लापरवाह, आरामपसन्द बना दिया था उसने मुझे ! उसके न रहने पर इन बिगड़ी आदतों के कारण मेरी क्या गति होगी, यह सोचकर ही काँप उठता। और शायद इसी भय से मैं उसे खुश भी रखने की कोशिश करता। और कभी-कभी पान लाकर अपने हाथ से उसे देता, तो वह ऐसे निहाल हो उठती कि उसके बूढ़े मुँह से दुआएँ वैसे ही झरने लगतीं, जैसे पतझड़ में पत्ते।

सचमुच यह उसके आराम का वक्त था। शरीर उसका टूट गया था। उम्र उसकी चालीस से ऊपर न होगी, लेकिन देखने में बिलकुल बूढ़ी लगती। मांस उसके शरीर में कहीं रह न गया था। हाथ-पाँव सूखकर लकड़ी हो गये थे। चेहरे की चमड़ी बेपानी के पौधे की तरह मुर्झा गयी थी। कल्ले बेडौल-से हो उभर आये थे। आँखें गढ़ों में घुसकर बेतेल के दीये की तरह हमेशा के लिए बुझ गयी थीं। कहीं अगर ज़िन्दगी थी, तो उसके पीक से हमेशा तर ओंठों और ज़बान में। वह बहुत तेज़ और साफ़ बोलती थी। और उसके ओंठों से सावन की झड़ी की तरह हमेशा मुस्कान झरती रहती थी। वह कहती, "बाबूजी, खाना दो-चार रोज़ न मिले, तो काट लूँगी। लेकिन पान बिना तो एक घड़ी मैं ज़िन्दा नहीं रह सकती !" उसकी सबसे बड़ी कमज़ोरी और शायद उसकी ज़िन्दगी की संजीविनी यही पान था। उसे खुश रखने का यह सस्ता नुस्खा मेरे हाथ अनायास ही लग गया था।

उसके शरीर को देखते उससे ज़्यादा काम की उम्मीद नहीं की जा सकती और इस उम्मीद से मैंने उसे रखा भी न था। दो वक्त रोटी ठोंक देने से ही मेरा काम चल सकता था। और सब मैं खुद

सँभाल लेने का आदी था। यों ज्यादा लवाज़मात मेरे बस की नहीं। साधारण सब। लेकिन जब से इस आया का मेरे घर पर हाथ पड़ा, सब-कुछ बदल गया। सफ़ाई-सजावट बढ़ गयी। बेकाम के कामों में भी उसे बेहद दिलचस्पी थी। मैं चुपचाप अपने लिखने-पढ़ने के काम में लगा रहता, और वह कुछ ऐसे अपने हाथों का जादू फेर देती कि घर चमक उठता।

एक वक्त झाड़ू देना भी काफ़ी था, लेकिन वह दोनों वक्त देगी। और इधर-उधर झाड़-पोंछ का सिलसिला तो जब तक वह घर में रहती, चलता रहता। कोई बात है कि कहीं एक काग़ज़ का टुकड़ा, या तिनका या जाला या गर्द का एक कण उसके देखने में रह जाय। एक बार शौक़ चर्राया था, तो दो फूलदान ख़रीद लाये थे। कुछ दिनों तक उनमें फूल भी सजाये थे। फिर उनके फूल सूखकर रह गये। और फिर उन्हें उठाकर एक ताक पर रख दिया था। रोज़-रोज़ का यह दर्देसर मैं कहाँ तक पालता? लेकिन आया की नज़र उन पर पड़ी, तो जैसे उनकी ज़िन्दगी लौट आयी। रोज़ सुबह उनमें रंग-बिरंगे फूल सजने लगे। वही हाल अगर की बत्तियों का भी था। आलमारी में पड़ी रहतीं, लेकिन मुझसे इतना न होता कि जला दिया करूँ। लेकिन अब शाम होते ही पूरा घर ख़ुशबू से भर जाता।

उसे मेरे हर काम का पता था। और बिना कहे ही वह सब पूरा कर देती, जैसे यह उसका ही घर हो, जैसे मेरी सारी जानी या अनजानी ज़रूरतें उसकी अपनी ही हों। और मैं था कि बस ठाट से अपने काम में जुटा रहता, हर बात से बेफ़िक्र।

कितने सकून और आराम की ज़िन्दगी थी! उसके आने के पहले भी मैं यही था। लेकिन उसके आ जाने के कारण ही, सब-कुछ वही रहने पर भी, मेरी ज़िन्दगी बिलकुल बदल गयी। पहले का वह होटल का एकरस, बेरस खाना और तितरा-बितरा घर, और समय और पैसे

की बरबादी याद आती, तो आया की क़ीमत और उसके हाथों के जादू का महत्व ठीक-ठीक आँकना मुश्किल हो जाता। क्या ख़ूब थी वह मेरी आया ! मेरा रोम-रोम उसके प्रति कृतज्ञता से भर उठता। और मैं मनाता कि यह मेरी माँ हमेशा बनी रहे ! इतनी सस्ती और कारामद माँ किस जवान और कमाऊँ पूत को नसीब हुई है ? कुल बीस रुपये महीना ही तो देता था मैं उसे सूखा। और उसकी ज़रूरतों की भी तो मुझे कोई चिन्ता न थी, जैसा कि जवान बेटों को अपनी माँ की होती है।

समय बीतता गया।

और फिर एक दिन अचानक ऐसा लगा कि जैसे सारा जादू टूट रहा हो। मेरी कुछ समझ में न आता, मन को विश्वास न होता, लेकिन महीने-भर का खर्चा उस महीने दस तारीख़ को ही आया के हाथों ख़त्म हो गया, और वह सिर झुकाये मेरे सामने हाथ फैला खड़ी हो गयी, तो मैं एक अजीब दुविधा में पड़ गया। क्या समझूँ, क्या न समझूँ। यथार्थ जो समझने को कहता, मन उसकी ओर से मुँह फेर लेता। दिमाग़ आँकड़ों को सामने रखता, तो दिल आँख मूँद लेता। छिः, क्या ऐसा भी मुमकिन है कि आया........नहीं, नहीं, असम्भव ! और फिर मन को समझाना ही पड़ता—शायद राशन कम हो जाने से....हर चीज़ का दाम बढ़ जाने से....या शायद और किसी कारण से....कारण ही होगा। वर्ना मेरी आया—वह मेरी माँ....

और उस दिन पहली बार छिपकर आया को मैंने ऐसी नज़र से देखा, जैसा कभी न किया था। और आया सचमुच बदली लगी। उसके पीक से तर ओंठ पहली बार मैंने खुश्क देखे। अब ध्यान दिया, तो यह भी याद आया कि उसकी तेज़ ज़बान भी इधर सुस्त पड़ गयी थी। और फिर इधर-उधर नज़र पड़ी, तो एकाध काग़ज़ के टुकड़े भी फ़र्श पर दिखायी पड़ गये। यह क्या बात ? और एक परेशानी का बीज

उस दिन मेरे दिमाग़ में पड़ गया। आया के सूखे ओंठ आँखों के सामने हर क्षण उस दिन बने रहे और उसकी यह बात कानों में गूँजती रही—'बाबूजी, खाना दो-चार रोज़ न मिले, तो काट लूँगी। लेकिन पान बिना तो मैं एक घड़ी ज़िन्दा नहीं रह सकती।' आज पहली बार उसके ओंठ सूखे थे। यह क्या मामूली असाधारण बात थी ?

आफ़िस से लौटते समय मैंने चार बीड़े अच्छे पान लिये। आया की ओर बढ़ाये, तो वैसा न हुआ, जैसा बराबर होता। न उसके बढ़े हाथों में वह उत्सुकता थी, न आँखों में वह खुशी की चमक, न ओंठों पर वह मुस्कराहट और न निहाल होकर उसने दुआएँ ही दीं।

अब भी क्या उसमें जो परिवर्तन हो आया था, उसमें शुबहे की कोई गुंजायश थी ? अपनी जान से भी प्यारी चीज़ के प्रति जब आदमी उदास हो जाता है, तो उसकी निराशा की सीमा का अन्दाज़ नहीं लगाया जा सकता और न उसकी मनःस्थिति के ही बारे में कुछ ठीक-ठीक कहा जा सकता है। मेरी परेशानी बढ़ गयी। आख़िर बात क्या है ?

और जब खाने की मेज़ पर बैठा, तो तीन नन्हें-नन्हें घिघरौंए बच्चे मेरे इर्द-गिर्द खड़े भूखी, मैली आँखों से मुझे घूर रहे थे और एक फ़र्श पर अन्धे कीड़े की तरह रेंग रहा था, इधर-उधर हाथों से कुछ टटोलता। एक क्षण को तो मैं अकचका-सा गया। ये कुत्ते-बिल्ली के बच्चे कहाँ से प्रगट हुए ? आया कभी भी अपने किसी बच्चे को यहाँ नहीं लायी थी। फिर भी यह समझते देर न लगी कि ये उसी के बच्चे होंगे। और किसी के कहाँ से आयेंगे ? उनमें से एक क़रीब पाँच साल का था, दूसरा तीन साल, तीसरा दो साल और चौथा गोद का। सभी हड्डियों के ढाँचे, मैले-कुचैले, काले-कलूटे, नंगे, घिनौने मांस के हरकत करते हुए लोथड़े ! मेरा मन जाने कैसा हो गया।

तभी पाँच सालवाला सिर झुकाये बोला, "सलाम, बाबूजी।"

और दोनों हाथ सिर से लगा जोड़ने की कोशिश की।

यह सलाम कितना अजीब और हृदय को भिन्ना देनेवाला था ! मन ख़राब हो गया।

आया को पुकारना चाहा। लेकिन तभी वह बच्चा फिर बोला, "बाबूजी, आज घर रोटी नहीं बनी।"

उसकी वह बात कितने सयाने आदमी की थी ! हैरत ! यह बच्चा कैसे सीख गया है यह-सब ? और मैंने अपना पूरा खाना उनमें बाँट दिया। और उन्हें खाते देखता रहा। और मेरा मन जाने कैसा होता रहा। और मेरे दिमाग़ में जाने क्या-क्या बातें उठती रहीं।

उठकर, उदास अपनी जगह पर आ बैठा, तो थोड़ी देर बाद आया आयी और सिर झुकाये एक पर्चा मेरे आगे बढ़ाकर बोली, "बाबूजी, ज़रा देख तो लीजिए, इसमें क्या लिखा है।"

वह किसी साहब का दिया हुआ आया के आदमी का सर्टीफ़िकेट था। उसने लिखा था कि 'यह आदमी बहुत ईमानदार, होशियार और मेहनती है। हिन्दुस्तानी और अंग्रेज़ी दोनों खाने बनाना बहुत अच्छी तरह जानता है। मुझे इसे छुड़ाते हुए बहुत अफ़सोस हो रहा है। लेकिन मैं इंगलैंड जा रहा हूँ, इसलिए मजबूरी है।....'

मैंने आया को सब बता दिया। फिर पूछा, "कब से तुम्हारा आदमी बेकार है?"

"बीस दिन हो गये, बाबूजी," वह सिर झुकाये बड़े ही दर्दनाक स्वर में बोली, "तीनों लड़कों की भी नौकरी छूट गयी है। ऐसी आफ़त कभी न पड़ी थी, बाबूजी। आपकी जान-पहचान तो बहुत जगह होगी, कहीं...." और वह चली गयी।

और मेरी समझ में सब आ गया। उसके ओंठ क्यों सूख गये, उसकी ज़बान क्यों बन्द हो गयी, मेरी जेब क्यों खाली हो गयी, मेरे घर की चाँदनी में धब्बे क्यों नज़र आने लगे, उसकी ईमानदारी,

माँपन, मेहनत और स्नेह क्यों बदल गये ? सब, सब समझ में आने लगा।

और मुझे गुस्सा आया, नफ़रत हुई। ऐसा था, तो उसने मुझसे क्यों न कहा ? क्यों आप ही वह सब-कुछ करने लगी ? क्यों इन घिनौने बच्चों को मेरे सिर पर पटक दिया कि मेरा खाना भी हराम हो गया ? क्यों, क्यों ? क्या मैंने दुनिया-भर का ठेका लिया है ? क्या मैं चाहूँ, तो भी क्या कुछ ज़्यादा खर्च कर सकता हूँ ? साधारण आदमी हूँ। साधारण आमदनी है। यह सब कैसे चल सकता है मेरे यहाँ ? नहीं, नहीं, मुझे अब....अब साफ़-साफ़ कहना ही पड़ेगा !

लेकिन कुछ कहना क्या आसान था ? एक बार जिसे माँ समझा था, नक़ली ही सही, फिर भी उससे कुछ कहना क्या आसान था ? रात-भर नींद न आयी। रात-भर सोच में पड़ा रहा। कभी गुस्से और नफ़रत से दिल भर उठता और कभी न जाने क्यों कुछ ऐसा विचार उठता, जो मेरी समझ में न आता। अजब दुविधा में पड़ा रहा।

समय वैसे ही चलता रहा। चाँदनी के धब्बे बढ़ते गये। मेरी परेशानी दिन-दिन बढ़ती गयी। बिलकुल साँप-छूँछूदर की गति थी। न निगलते बने, न उगलते। क्या करूँ, क्या न करूँ ?

लेकिन ऐसे कब तक चलता ? एक-न-एक दिन तो मुझे कुछ तय करना ही होगा। कहाँ तक मेरे बस की बात है, मैं जानता था। एक दिन मैंने सोचा था कि इस आया को कभी नहीं छुड़ाऊँगा। वह थी भी ऐसी ही। किन्तु इधर जो मुझे कड़वे अनुभव हो रहे थे, उनसे मेरे विश्वास, आस्था और स्नेह की नींव हिल गयी थी। वह इतनी गहराई तक मेरे जीवन में उतर आयी थी कि सहसा उसके साथ विरोधी व्यवहार करना आसान न था। फिर भी यह रोज़-रोज़ की किच-किच। कभी मेरे इर्द-गिर्द घिनौने बच्चे रेंग रहे हैं, कभी उसके बड़े लड़के मेरे खाने और चाय पर नज़र गड़ाये खड़े हैं, कभी उसका आदमी बीड़ी

के लिए पैसे माँग रहा है ! जैसे अब यह घर मेरा नहीं, उनका ही हो गया हो । और सबके ऊपर मेरा बढ़ता खर्च । मेरा आराम हराम हो गया । खाना-पीना दुश्वार । एक अजब फ़िक्र कि इस मुसीबत से कैसे छुटकारा मिले ? कैसे आया से साफ़-साफ़ कह दूँ कि........

कहना ही पड़ेगा । ऐसे अब नहीं चल सकता ।

तभी एक दिन मेरे एक दोस्त मिलने आये । उनके एक किताब की दुकान थी । इधर उनका काम बढ़ गया था । प्रकाशन का भी कुछ काम उन्होंने शुरू कर दिया था । उन्हें एक चपरासी की ज़रूरत थी—ईमानदार, जाना-पहचाना । उन्होंने मुझसे कोई ऐसा आदमी देने को कहा—जल्द ।

मुझे आया के बेकार आदमी का खयाल आ गया । लेकिन फिर सोचा, वह तो कुक है । फिर भी उसी शाम मैंने उसे बुलवाया । पूछा, "भाई, एक मेरे दोस्त के यहाँ चपरासी की जगह खाली है । करोगे ?"

उसने दोनों हाथ उलझाकर, आँखों में उत्सुकता लाकर कहा, "करूँगा, बाबूजी । आप...."

"तुमने कभी यह काम किया है ?"

"बहुत-कुछ किया है, बाबूजी । गवर्नमेन्ट प्रेस में चार साल तक चपरासी रहा । कई साहबों का ड्राइवर रह चुका हूँ । मोटर का भी कुछ काम जानता हूँ । रामा में दो साल सेल्समैनी भी कर चुका हूँ । और खाना बनाना तो मैंने पेट से ही...."

मैं कई क्षण तक उसका मुँह निहारता रहा । इतना-सब होते भी बेकार ! मुझे आश्चर्य हो रहा था । क्या ज़माना आ गया है !

"कुछ पढ़ना-लिखना जानते हो ? बात यह है कि बैंक, डाकखाना...."

"थोड़ी-बहुत हिन्दी-अंग्रेज़ी जानता हूँ । सब कर लूँगा, बाबूजी ।

आप उन्हें एक ख़त लिख दीजिए। आपको शिकायत का कोई मौक़ा........"

और मैंने ख़त लिखते पूछा, "तनख़ाह के बारे में क्या लिखूँ?"

"कुछ न लिखिए, बाबूजी। इस वक़्त तो दो सूखी रोटी भी मिल जाय, तो पानी में भिगोकर........"

आया के ओंठ दूसरे दिन तर थे। मुस्की भी उभरने-उभरने को हो रही थी। पूछा, तो मालूम हुआ कि उसके आदमी ने काम शुरू कर दिया। वह बोली, "क्या बताऊँ, बाबूजी, बेकार को दुकानदार भी उधार नहीं देता। अब...."

संजोग की बात उसी वक़्त मेरे एक प्रोफ़ेसर मित्र को भी एक लड़के नौकर की ज़रूरत पड़ गयी। उनका पहला नौकर बीमार पड़ गया था। मैंने आया के सबसे बड़े लड़के को वहाँ भेजने के लिए बुलाया। पूछा, "नौकरी करेगा?"

"बड़ी मेहरबानी होगी, बाबूजी!" आँखों में एक भिखारी की याचना भरके वह तेरह-चौदह साल का लड़का ऐसे आँखें मलकाता, दयनीय स्वर में बोला कि मेरी आत्मा काँप उठी। हँसने-खेलने, पढ़ने-लिखने के दिन....

प्रोफ़ेसर साहब के यहाँ वह काम करने लगा। और आया के दूसरे बड़े लड़के को मैंने अपने दफ़्तर में टट्टियों पर पानी छिड़कने के लिए रखवा दिया और तीसरे को एक होटल में बर्तन माँजने का काम मिल गया।

और मेरे घर का मेला सहसा ऐसे उठ गया कि विश्वास ही नहीं होता। आया के ओंठ अब पहले ही की तरह फिर हमेशा तर रहने लगे, मुस्कान झरने लगी और ज़बान तो जैसे पहले से भी ज़्यादा तेज़ हो गयी। मेरे घर की चाँदनी लौट आयी। वही सफ़ाई, वही आराम, वही स्नेह, वही जादू—सब-कुछ वही। और मैं सोचता कि........

महीने का अख़ीर आया, तो मैंने कहा, "आया, अबकी तुम्हारी तनख़ाह देर से मिलेगी। रुपये...."

वह सिर झुकाकर, पैर के अँगूठे से फ़र्श कुरेदती बोली मन्द स्वर में, "बाबूजी, अभी तो आपके ही मेरे ऊपर पचासेक........"

"आया!" मेरे मुँह से एक चीख़ निकल गयी।

वह मेरे पैर पकड़कर गिड़गिड़ा उठी, "माफ़ कीजिए, बाबूजी! मैं बेईमान नहीं। लेकिन....आप तो पढ़े-लिखे हैं, बाबूजी, आप क्या नहीं समझते....बाबूजी, मैं मजबूर थी। बाबूजी, माफ़ कर दीजिए! थोड़ा-थोड़ा हर महीने काट लीजिएगा। बाबूजी, क्या बताऊँ........"

और उसकी बूढ़ी आँखों से फर-फर आँसू गिरे जा रहे थे। और मैं सोच रहा था—मैं पढ़ा-लिखा आदमी हूँ। मुझे समझाना चाहिए था। मुझे अपनी उस माँ-आया को समझना चाहिए था। और मुझे बहुत अफ़सोस हुआ कि बिना समझे-बूझे मैंने उसके बारे में क्या-क्या........

वह लड़की

"वन चिप ! डैडी, वन चिप !" और फिर रुदन के स्वर में लिपटे हुए, अस्पष्ट-से धारा-प्रवाह अंग्रेजी के वाक्य इस तरह मेरे कानों पर आ बजे कि मैं जगकर उठ बैठने को विवश हो गया।

जनवरी की एक सुबह थी। बन्द दरवाज़ों के शीशों से बरामदे की मद्धिम रोशनी के सिवा कुछ भी दिखायी न दे रहा था। और लगातार आवाज़ आ रही थी, "वन चिप, डैडी, वन चिप !"....इन पाँच शब्दों के सिवा एकाध और को छोड़कर कुछ भी मेरे पल्ले न पड़ रहा था। कण्ठ-स्वर से ज़रूर मालूम हो रहा था कि वे किसी स्त्री के हैं और वह स्त्री ज़रूर कोई ऐंग्लोइंडियन है। ये ऐंग्लोइंडियन स्त्रियाँ इस तरह अंग्रेज़ी बोलती हैं कि मेरे लिए उनका मुँह ताकने के सिवा कोई चारा नहीं रहता। एक हफ़्ता पहले, जब मैं सिविल लाइन्स के इस बंगले का एक भाग किराये पर लेकर यहाँ आया था, तो मुझे लगा था कि मैं एक अजनबी दुनिया में आ गया हूँ, जहाँ के लोग जुदा हैं, जहाँ की बू-बास और है, जहाँ की भाषा भिन्न है, जहाँ का सब-कुछ अपरिचित है। उस वक्त तक मुझे इस बात का ज्ञान न था कि इस शहर का एक

ऐसा भी हिस्सा है, जहाँ से हिन्दुस्तान को खैरबाद कह दिया गया है, इस हिस्से के नज़दीक आने का मुझे अवसर ही कब मिला था?

कालेज के ज़माने में इन सड़कों से गुज़रा ज़रूर था, रँगी-पुती पुतलियों को भी देखा था, कुछ आधुनिकता के नज़ारों से भी आँखें दो-चार हुई थीं, लेकिन मैं यह कब समझे था कि यह बिलकुल ग़ैर दुनिया है। यह जानता तो कभी भी इधर का रुख न करता। फिर सोचने-समझने का भी वक्त मुझे कहाँ मिला था? जिन अपने मेहरबान मालिक के मकान में मैं रहता था, उन्होंने अचानक ऐसी नादिरशाही नोटिस दे दी थी कि चौबीस घण्टे में मुझे उनका मकान खाली कर देना था। उस वक्त मेरे एक इंजीनियर मित्र ने सहायता की और चट मुझे सिविल लाइन्स के इस बंगले का दो कमरों का एक हिस्सा दिला दिया। इसके मुख्य किरायेदार एक ऐंग्लोइंडियन थे। उनका ज़माना खराब हो गया था, इसलिए वह अपने परिवार की जगह काटकर, दो कमरे किराये पर उठाने को मजबूर हुए थे। मैं उन्हीं का किराये-दार था।

मैं रात को अपना सामान लेकर आया था। फिर भी यह मालूम होने से न रहा कि दीवारों ने बरसों से सफ़ेदी का मुँह नहीं देखा है। एक अजीब-सा तेज़ गन्ध का भभका मेरा स्वागत करने को वहाँ तैयार था, जैसे तरह-तरह के सड़े हुए सेन्टों और लवेण्डरों में मसाले सानकर दीवारों और फ़र्श का निर्माण हुआ हो। रात-भर नींद न आयी। सुबह उठा तो एक अजनबी दुनिया सामने थी।

बड़ी मेम साहब (साहब की विधवा माँ) गुड मार्निङ्ग कर, अपना परिचय देती हुई अन्दर आयीं। वह काफ़ी बूढ़ी थीं। उनका शरीर तो जर्जर हो ही गया था, ज़बान में भी मोर्चा लग गया था। वह लटपटा-कर बोलती थीं। दाँत टूट जाने के कारण, रह-रहकर उनके मुँह से लार टपक पड़ती थी, जिसे वह रूमाल से पोंछ लेती थीं। उनका

रूमाल किसी फटे-पुराने स्कर्ट का टुकड़ा मालूम होता था। उनके जूते, मोज़े, स्कर्ट, स्वेटर, स्कार्फ़, कोट बड़े ही जर्जर, बेडौल और ढीले-ढाले थे। बाद में उन्होंने मुझे बताया था कि उनमें से कई चीज़ें दस साल पुरानी हैं, उनका बेटा बड़ा ही नालायक़ है, वह उनकी बिलकुल परवाह नहीं करता। वह अपने पति के ज़माने के बनाये हुए कपड़ों से ही आज तक गुज़र करती आ रही हैं।

वह मेरी बग़ल में कोच पर (फ़र्नीचर उनका ही था) बैठती हुई बोलीं, "तुम चाय नहीं पीते ?"

मैंने शुरू में ही उनसे कहा था कि वह अंग्रेज़ी ज़रा धीरे-धीरे बोलें, मेरी समझ में उन लोगों की अंगरेज़ी ज़रा कम आती है। इस पर वह एक गौरवमय हँसी हँसकर उर्दू में बोली थीं, "तुम हिन्दुस्तानी चाहे जितनी तालीम हासिल कर लो, तुम लोगों को अंग्रेज़ी कभी नहीं आने की। कान्वेन्ट स्कूल में मुझे उर्दू भी पढ़ायी गयी थी, मैं काफ़ी अच्छी उर्दू बोल सकती हूँ।"

सचमुच वह काफ़ी अच्छी उर्दू बोल लेती थीं। शब्दों के उच्चारण उनके काफ़ी दुरुस्त थे, यह बात दूसरी है कि जब वह अपने नौकरों के साथ बोलती थीं, तो वह ज़बान 'साहबी हिन्दुस्तानी' ही होती।

उनकी आज की भी सूरत-शक्ल बता रही थी कि वह कभी बहुत ही ख़ूबसूरत रही होंगी। रङ्ग उनका साफ़ था। आँखें बड़ी-बड़ी थीं और उनमें आज भी कुछ चमक और आकर्षण अवशेष था। वह सुरमा लगाये हुए थीं। उनके पतले, अन्दर को घुसे हुए ओंठों की आज की बूढ़ी मुस्कान ने जवानी में क्या रंग दिखाया होगा, समझना आसान था।

मैंने उनको जवाब दिया, "पीता तो हूँ, लेकिन अभी इन्तज़ाम कहाँ कर पाया हूँ।"

"तुम्हारे पास स्टोव नहीं है ?"

"जी, नहीं।"

"चाय-चीनी हो, तो मैं अपने यहाँ बनवा दूँ?"

"अभी तो कुछ नहीं है, शाम को लाऊँगा।"

"तुम्हारे बाल-बच्चे तो होंगे?"

"जी।"

"कहाँ हैं?"

"देहात में।"

"उन्हें कब लाओगे?"

"अभी कोई ठीक नहीं।"

"खाने-पीने का क्या करोगे?"

"होटल में ही फ़िलहाल चलेगा।"

"ओ," उन्होंने नाक सिकोड़कर कहा, "होटल का खाना बड़ा खराब होता है। क्यों नहीं तब तक हमारे यहाँ पेइंग गेस्ट (अपने खर्चे पर खानेवाला मेहमान) हो जाते हो? मिस्टर गुप्टा, एक बात का खास तौर पर तुम्हें खयाल रखना होगा। मकान-मालिक, राशनिंग आफ़िस या हाउस-कन्ट्रोल आफ़िस का कोई आदमी तुम से पूछे, तो कह देना कि मैं साहब का गेस्ट हूँ, वर्ना मेरे लिए बड़ी मुसीबत हो जायगी। तुम जानते हो, कानूनन हम कोई हिस्सा सब-लेट नहीं कर सकते। उस तुम्हारे दोस्त इंजीनियर ने तुम्हारी मुसीबत का हाल बताया, तो हम मान गये। इंसान की मदद इंसान ही तो करता है!"

"शुक्रिया!"

"तो खाने के बारे में तुम्हारा क्या खयाल है! होटल...."

"सोचूँगा।"

"हाँ, ज़रूर सोचना। महँगा नहीं पड़ेगा। आराम रहेगा। बिलकुल घर की तरह तुम यहाँ रहोगे। आई ऐम जस्ट लाइक यौर मद (मैं बिलकुल तुम्हारी माँ की तरह हूँ)।"

"सोचूँगा।"

"और हाँ, किराया मुझे ही देना, मेरे बेटे को नहीं। क्या बताऊँ, मिस्टर गुप्टा, वह मुझे सिर्फ़ सौ रुपया महीना खर्च के लिए देता है। इतना बड़ा घर, चार मेम्बर, दो नौकर, सब खर्च मुझे उसी से चलाना पड़ता है। मेरे हस्बैन्ड (पति) मेरे नाम बहुत रुपया जमा कर गये थे। सब खर्च हो गया........ इस महीने का एडवांस दोगे न?"

"हाँ," और मैंने रुपये निकालकर उन्हें देते हुए कहा, "यह कमरों में बू कैसी है, मेम साहब? क्या सफ़ेदी........"

और वह काँपती उँगली से नोट गिनती हुई इतने ज़ोर से हँस पड़ीं कि ढेर-सारी लार उनके स्कार्फ़ पर चू पड़ी। वह नोटों को मुट्ठी में दबाती हुई बोलीं, "यह कमरा एक लड़की का ड्रेसिंग रूम था। वह यहाँ हमारे समाज की सबसे खूबसूरत और मशहूर लड़की थी। वह सेन्टों और लवेन्डरों की कितनी ही शीशियाँ रोज़ अपने जिस्म पर उँड़ेला करती थी। यहाँ का ज़र्रा-ज़र्रा उसके टायलेट्स से बसा हुआ है। ओ, शि वाज़ ए वन्डरफ़ुल गर्ल (ओ, वह एक अद्भुत लड़की थी)!"

"यह कब की बात है, मेम साहब?"

"क़रीब पन्द्रह साल हुए होंगे। उस वक्त मेरे हस्बैन्ड इस बंगले में उसी हैसियत से आये थे, जिसमें आज तुम आये हो। उस लड़की का हस्बैन्ड मिलीटरी में एक बड़ा अफ़सर था। हमें उधर के दो कमरे मिले थे। मेरा लड़का उस वक्त तीस साल का था।"

"पन्द्रह साल से इस कमरे में सफ़ेदी........"

"मेरे सामने तो कभी हुई नहीं। मकान-मालिक बड़ा हरामी है। चाहता है, हम परेशान होकर यह बँगला छोड़ दें तो वह ज़्यादा किराये पर उठा दे।"

"मेम साहब आपने भी कभी........"

"हम क्यों करायें, मिस्टर ? और हमारे पास इतना पैसा कहाँ है ? तुम चाहो तो अपने खर्चे से करा लो।"

"लेकिन पन्द्रह साल से यह बू....ताज्जुब है !"

"इसमें ताज्जुब की क्या बात है ? तुम उस लड़की को नहीं जानते, इसलिए ऐसा कहते हो। उसका हर कमरा लवेन्डर से चौबीसों घण्टे बसा रहता था। वह दीवारों पर, फ़र्श पर, हर जगह सेन्ट और लवेण्डर उँडेलवाया करती थी। सड़क से वह गुज़रती थी, तो खुशबू की एक आँधी उसके साथ चलती थी। लोग दूर से ही समझ जाते थे कि वह आ रही है। वह हमारे क्लबों की जान थी। जहाँ चली जाती, रौनक हो जाती। ओ, आई हवेन्ट सीन ए गर्ल सो प्रेटी, ऐज़ शि वाज़ (ओ, उसकी तरह सुन्दर लड़की मैंने कभी नहीं देखी) !"

"ओ !"

"येस, मिस्टर गुप्टा। बट ऐलास (लेकिन अफ़सोस) !....अच्छा, अब मुझे इजाज़त दो....तुम मेरी बातों का ख़याल रखना। खाने के बारे में भी सोच लेना। कोई तकलीफ़ हो तो मुझसे कहना।"

और वह उठी ही थीं कि एक बारह-तेरह साल की खूबसूरत, रूज, पावडर और लिप-स्टिक से लिपी-पुती लड़की तितली की तरह फुदकती कमरे में आकर बोली, "गुड मार्निङ्ग, मिस्टर गुप्टा !"

मैं तो उसे देखकर ही हक्का-बक्का हो गया। जवाब क्या देता ?

मेम साहब ने कहा, "इसका जवाब दो, मिस्टर गुप्टा। यह मेरी इकलौती ग्रैन्ड डाटर (पोती) मिस रोज़ हैं।" और फिर अपनी पोती से वह अंग्रेज़ी में बोलीं, जिसका मतलब था—इनसे ज़रा धीरे-धीरे बोलो या हिन्दुस्तानी में बोलो।

मिस रोज़ ने मुँह बनाकर कहा, "हैम हिन्डुस्टानी नै बोलने सैकटा।"

हिन्दुस्तान के 'आधे खून' की यह बोली सुनकर तो मैं भौंचक्का

रह गया था। उस वक़्त मुझे सही माने में मालूम हुआ था कि मालिक और ग़ुलाम के ख़ून की शक्ति में कितना फ़र्क़ होता है!

फिर बड़ी मुश्किल से वह धीरे-धीरे अंग्रेज़ी में बोली थी। उसके चेहरे के भावों से साफ़ झलक रहा था कि मैं कैसा असभ्य था कि सभ्यों की भाषा भी ठीक तरह से नहीं समझ सकता। उसे ख़ुशी थी कि एक कहानी-लेखक उसके बँगले में रहने आ गया है, तो उसे बहुत-से जासूसी और रोमान्टिक उपन्यास पढ़ने को मिलेंगे। उसके डैडी तो किताबें ख़रीदने के लिए उसे बिलकुल पैसा नहीं देते। वह किताबें पढ़ने के लिए हमेशा तरसा करती है।

मैंने जब बताया था कि मुझे वैसे उपन्यासों में कोई दिलचस्पी नहीं, तो वह बहुत उदास हो गयी थी और कहा था कि मैं कैसा लेखक हूँ?

इस पर मेम साहब ने कहा था कि उसके लिए मुझे कुछ किताबों का ज़रूर इन्तज़ाम करना चाहिए और इस लड़की में दिलचस्पी लेना चाहिए। इसका डैडी बड़ा ही नालायक़ है। वह इसकी तरफ़ बिलकुल ध्यान नहीं देता।

और वह चली गयी थीं। और कमरे का वह गन्ध का भभका जैसे तरह-तरह की ख़ुशबुओं में बदल गया। मैं मन-ही-मन उन सेन्टों और लवेण्डरों की शीशियाँ उँडेलनेवाली लड़की के बारे में कल्पना करने लगा। वह बोसीदा कमरा जैसे सहसा परिस्तान का एक टुकड़ा बन गया हो। वह परी कैसी होगी, उसका ड्रेसिंग टेबुल कैसा और कमरे में कहाँ होगा, उस पर कैसे टायलेट रखे होंगे, वह कैसे 'ड्रेसिंग मिरर' के सामने खड़ी होती होगी, कैसे अपना शृङ्गार करती होगी, कैसे सेन्टों और लवेण्डरों की शीशियाँ उँडेलती होगी? जाने क्यों, उस वक़्त उस परी की रूप-रेखा मुझे नूरजहाँ से मिलती-जुलती लगी, जो गुलाब की पंखुड़ियों से बसे पानी में नहाती थी। गुलाब की पंखुड़ियों के बीच नूरजहाँ

का खूबसूरत मुखड़ा कितना लुभावना लगता होगा ! सेन्ट-लवेण्डरों में बसी वह खूबसूरत परी कैसी लगती होगी ? जाने कैसे मेरे दिमाग़ में यह बात आ बैठी है कि जो सुगन्धों का प्रेमी होता है, वह बहुत ही खूबसूरत होता है ।

यह मेरा सौभाग्य ही तो था कि ऐसा कमरा मुझे रहने को मिला, जिसके फ़र्श पर दो खूबसूरत पाँव चले होंगे, जिसकी दीवारों पर दो नन्हें-मुन्ने प्यारे-प्यारे हाथों ने इत्र छिड़का होगा, जिसकी हवा में सुगन्ध में बसे रेशमी बाल कंघी में लहराये होंगे, जहाँ पावडर की धूल उड़ी होगी, जिसका कण-कण एक परी की रोमांटिक साँसों से बसी होगी ।....

और मेरी नींद हराम हो गयी। रोशनी बुझाकर बिस्तर पर पड़ता, तो अँधेरे में वह चेहरा उभरता मालूम होता, कहीं वह पाँव चलते दिखायी देते, कहीं दीवारों पर इत्र छिड़कते वह हाथ नज़र आते, कहीं लहराते बाल, कहीं पावडर लगाते पफ़, कहीं रूज, कहीं लिप-स्टिक और खुशबू की एक ऐसी लहर आती कि मैं चौंककर उठ बैठता । कभी-कभी तो ऐसा लगता, जैसे ड्रेसिंग टेबुल के सामने खड़ी वह शृङ्गार कर रही है और कोई गीत गुनगुना रही है, या ओंठों से सीटी बजा रही है, और कभी-कभी ऐसा कि वह नंगी खड़ी पावडर और सेन्टों से नहा रही है । और मैं घबराकर रोशनी जला देता और कमरे का कोना-कोना देख डालता कि कहीं सचमुच........

उस लड़की के बारे में कुछ और भी जानने की मेरी उत्सुकता बहुत बढ़ गयी । मैं जब भी उसके बारे में सोचता, उसका अन्त मेम साहब के उन शब्दों से ही होता, 'लेकिन अफ़सोस !' आख़िर उस लड़की का ऐसा क्या हुआ कि मेम साहब के मुँह से वह उद्‌गार निकला ? दुनिया के इतिहास की खूबसूरत लड़कियों के साथ जो एक ट्रेजेडी जुड़ी होती है, सोच-सोचकर मैं कभी-कभी सहम जाता । मेरा ख़याल है कि जो लड़की जितनी ही खूबसूरत होती है, उसके साथ

उतनी ही बड़ी ट्रेजेडी का सम्बन्ध होता है। सामन्तशाही और पूँजी-वादी व्यवस्था जैसे हर खूबसूरत चीज़ की दुश्मन होती है और उसे महलों और बाज़ारों का सौदा बना देती है, उसी तरह खूबसूरत लड़कियों को भी तो वह महलों की 'शोभा' और बाज़ारों का माल बनाकर छोड़ती है।

मैं मेम साहब से उसके बारे में पूछना चाहता था, लेकिन मेम साहब कुछ नाराज़-सी थीं। यों भी मैं उनका पेइंग गेस्ट न हो सकता था, क्योंकि उनके खान-पान, रहन-सहन से मेरा मेल बैठना असम्भव था। फिर दोस्तों की फब्तियाँ अलग मेरे सिर आ पड़ीं, जैसे सिविल लाइन्स में एक एँग्लोइंडियन परिवार के साथ रहना ही अपने को बद-नाम कर देना हो। फिर भी मेम साहब से 'ना' कह देना मुश्किल था। वह रोज़ सुबह आकर पूछतीं और मैं टाल देता। हाँ, इसकी कमी मैं दूसरी ओर ज़रूर कुछ पूरा करता रहा। मिस रोज़ के लिए दो किताबें ला दी थीं। वह बेचारी मामूली पेंसिल, रबर और काग़ज़ की भी मोहताज थी। एक दिन रहा न गया, तो मैंने पूछा, "आप टायलेट पर तो इतना खर्च करती हैं, और ये छोटी-मोटी ज़रूरत की चीज़ें...."

वह तमककर बोली, "हैम टायलेट का बगैर कैसा रैने सैकटा, मिस्टर गुप्टा?" और फिर वह अंग्रेज़ी में बोली, जिसका मतलब था, हम खाने बग़ैर रह सकते हैं; पढ़-लिख न भी सकें, तो कोई बात नहीं; लेकिन टायलेट के बिना कैसे ज़िन्दा रह सकते हैं? हमारे समाज में इसके बिना एक क्षण भी नहीं चल सकता। कोई मेरी ओर आँख उठाकर देखना भी पसन्द न करेगा। अभी मुझे अपने प्रेमी को ढूँढ़ना है और उसे जीतना है........

उसकी साफ़गोई पर मैं तो दंग रह गया। उससे क्या कहता, क्या पूछता? वह हर छोटी चीज़ के लिए भी मुझे इतना थैंक्स (शुक्रिया) देती कि मैं शर्मिन्दा हो जाता। मुझे उस पर दया भी आती, अफ़सोस

भी होता।

छठवें दिन बाज़ार से मैं केक-पेस्ट्री ले आया और मेम साहब को चाय पर अपने कमरे में बुलाया। उस लड़की के बारे में कुछ और जानने की उत्सुकता को दबाये रखना अब मुश्किल हो रहा था। रात के अँधेरे में जो उसकी छाया मुझे बरबस दिखायी देती, उससे कभी-कभी मुझे शंका होती कि शायद वह लड़की मर गयी है और आज भी उसकी प्रेतात्मा अपने ड्रेसिंग रूम में शृंगार करने आती है। ऐसा कभी देखने का मौक़ा न मिला था, पर वैसा पढ़ा-सुना तो बहुत था। सो मैं कम-से-कम इस बात से आश्वस्त हो जाना चाहता था।

मेम साहब मसूढ़ों से मुलायम केक काटकर, चाय की चुस्की ले, एक मीठी मुस्कान के साथ, हँसती आँखों से मेरी ओर देख, चाय की तारीफ़ में कुछ कहनेवाली थीं कि मैं बोला, "मेम साहब, कई दिनों से रात में मुझे नींद नहीं आती। जाने कैसी एक छाया अँधेरे में मुझे दिखायी देती है कि मेरी आती नींद भी भाग जाती है।"

"ओ गाड! यह तुम क्या कह रहे हो? इस घर में रहते हुए हमें पन्द्रह साल हो गये, कभी किसी ने कुछ नहीं देखा। तुम हिन्दू लोग बड़े वहमी होते हो!" और वह काँपते हुए हाथ से केक का टुकड़ा मुँह में डालकर घुलाने लगीं।

"नहीं, मेम साहब, मेरा उस-सब में विश्वास नहीं। लेकिन सच कहता हूँ, मुझे ऐसा लगता है, जैसे वह खूबसूरत लड़की रोज़ रात के अँधेरे में आकर यहाँ शृंगार करती है, कमरे की हवा उस वक़्त ख़ुशबू से भर जाती है और मैं चौंककर उठ बैठता हूँ........"

मेम साहब इतने ज़ोर से हँस पड़ीं कि उनके ओंठों के कोनों से ढेर-सारी लार चू पड़ी। रूमाल से मुँह पोंछकर वह बोलीं, "तो उस लड़की के खयाल ने ही तुम्हें इस क़दर पागल बना दिया कि तुम अँधेरे में भी उसकी छाया देखने लगे? कभी सचमुच में तुमने उसे देखा

होता, तब तुम्हारी क्या हालत होती ?"

"क्या वह सचमुच इतनी खूबसूरत थी, मेम साहब ?" मैंने लासा लगाया।

"हाँ, वह यहाँ की सबसे खूबसूरत लड़की थी। जाने कितने बड़े लोग उसके पीछे दीवाने थे। रुको, चाय पी लूँ, तो बताऊँ। वह कोई मरी थोड़े ही है कि तुम्हें उसकी छाया नज़र आने लगे !"

वह प्याली की चाय ख़तम करके बोलीं, "क्या बताऊँ। उस लड़की के बारे में जब भी सोचती हूँ, बड़ा रंज होता है। मेरे हस्बैन्ड का तबादला जब बरेली से यहाँ को हुआ, तो हमें सिविल लाइन्स में कोई खाली बंगला न मिला। हम बहुत परेशान थे कि क्या करें। तभी एक दिन उस लड़की के हस्बैन्ड ने मेहरबानी करके अपने बंगले के दो कमरे तब तक रहने के लिए दे दिये। यह काफ़ी बड़ा बंगला है। इसमें आठ अच्छे-अच्छे कमरे हैं। और वे तीन ही तो थे।"

"एक कौन था ?"

"एक उनका बड़ा ही प्यारा बच्चा था।"

"उसी लड़की से ?"

"हाँ, हाँ। मगर उसे देखकर क्या कोई कह सकता सकता था कि वह माँ है। उसे अपनी खूबसूरती, जवानी और बनाव-सिंगार की सबसे ज़्यादा फ़िक्र रहती थी। वह चारों ओर से अपने को वैसे ही सँभाले हुए थी, जैसे कीचड़ में कमल। उनकी फ़ेमिली (कुल) बिलकुल आयडियल (आदर्श) थी। मियाँ-बीवी में बेहद मुहब्बत थी। और उनका बच्चा तो बिलकुल एक खिलौना था। वे उसे बहुत प्यार करते थे। जहाँ-कहीं भी जाना होता, तीनों साथ ही जाते। देखनेवालों में कितनों को खुशी होती और कितनों को जलन, यह बताना बड़ा मुश्किल है। हमारी समाजी ज़िन्दगी में एक बहुत बड़ा ऐब है, मिस्टर गुप्टा, कि लोग शादीशुदा लड़कियों का भी पीछा नहीं छोड़ते। एक

बसे घर को उजाड़ना तो जैसे यहाँ एक मामूली खेल है।

"आज मैं सोचती हूँ कि अगर हम यहाँ न आये होते, तो कुछ भी न बिगड़ा होता। यह सोचकर मुझे बेहद रंज होता है, मिस्टर गुप्टा, कि जिन मेहरबान ने हमें पनाह दी थी, वह हमारी ही वजह से बरबाद हो गये। खुदा मेरे नाशुक्रे बेटे को कभी माफ़ न करेगा! मेरा बेटा हुआ तो क्या, मैं यह बात कहने से कभी बाज़ न आऊँगी!"

मेम साहब का चेहरा गुस्से और नफ़रत से तमतमा आया। वह चुप हुईं, तो मैंने एक सिगरेट उनकी ओर बढ़ाया। सिगरेट हाथ में लेती वह बोलीं, "आई डोन्ट स्मोक पब्लिकली (मैं लोगों के सामने नहीं पीती)। ख़ैर, तुम तो मेरे बेटे के बराबर हो।"

मैंने सिगरेट जला दिया। कई कश लेकर, अपनी उत्तेजित भावनाओं पर क़ाबू पाकर वह बोलीं, "यहाँ आने के तीन महीने बाद एक दिन मेरे बेटे ने यह बताया कि उसे हाईकोर्ट में स्टेनो और जजों के प्रायवेट सेक्रेटरी की जगह मिल गयी है। हमें ताज्जुब हुआ कि उसे ऐसी अच्छी जगह कैसे मिल गयी? वह बिलकुल लोफ़र था, मिस्टर गुप्टा। उसके फ़ादर (पिता) ने कई नौकरियाँ उसे पहले भी दिलायी थीं, लेकिन हर जगह से वह बदनाम होकर निकाला गया था, आख़िर उससे नाउम्मीद होकर, उसके बारे में कुछ भी सोचना हमने बन्द कर दिया था। वह मेरा बेटा है, तो क्या हुआ, मिस्टर गुप्टा? आई मस्ट स्पीक द ट्रुथ (मुझे सच ही कहना चाहिए)!" और उन्होंने खुले दरवाज़े की ओर देखकर, ज़रा सहमकर कहा, "दरवाज़ा बन्द कर दो, मिस्टर गुप्टा।"

मैंने दरवाज़ा बन्द कर दिया। वह ज़रा और इतमीनान से बैठकर बोलीं, "हमारे ताज्जुब का राज़ ठीक तीन महीने बाद एक रात को खुल गया। रात को क़रीब दो बजे होंगे। अचानक एक चीख़ की आवाज़ सुनकर मैं जग पड़ी। दो-तीन दिन से उसके हस्बैन्ड की तबीयत कुछ

ख़राब थी। मुझे शक हुआ कि कहीं उनकी तबीयत ज़्यादा ख़राब तो नहीं हो गयी। मैंने अपने हस्बैन्ड को जगाकर बताया, तो उन्होंने कहा कि मैं जाकर देख लूँ। वहाँ जाकर जो नज़ारा मैंने देखा, क्या बयान करूँ, मिस्टर गुप्ता ? वह नशे में बुत अपने पलंग पर लुढ़की हुई थी, और उसके हस्बैन्ड ग़ुस्से से काँपते हुए उसके पास खड़े एक पागल की तरह चीख़ रहे थे। मेरी तरफ़ उनकी नज़र उठी, तो वह मुँह फेरकर अपने पलंग पर जा गिरे। मैंने पास जाकर पूछा, 'क्या बात है ?' किसी ने जवाब न दिया, तो मैं बोली, 'मैं तुम लोगों की माँ के बराबर हूँ। कोई बात हो, तो बताओ। शायद कुछ मदद कर सकूँ।' अचानक वह फूटकर रो पड़े। मैं उनके पास बैठ, उनके आँसू पोंछने लगी, तो वह मुझसे लिपटकर एक बच्चे की तरह और भी ज़ोर से बिलख-बिलखकर रो उठे। मैंने बहुत इसरार किया, तो वह रोते गले से ही बोले, 'ऐसा कभी नहीं हुआ, मदर, कभी नहीं !' उनका रोना थमने ही को न आता था। मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गयी। उनका रोना ऐसा लग रहा था, जैसे उनका कलेजा ही फटा जा रहा हो। और वह नशे में ऐसी बेहाल लुढ़की पड़ी थी, जैसे उसे किसी बात का होश ही न हो, जहाँ उसके कपड़ों से ख़ुशबू की आँधियाँ चलती रहती थीं, आज शराब की तेज़ बू आ रही थी। जहाँ तक मुझे मालूम था, वे दोनों बड़े ही सोबर (नशा न करने वाले) थे। मैं बड़े ताज्जुब में थी कि आज यह सब मैं क्या देख रही हूँ ! आख़िर मैंने उनसे पूछा, 'यह कहीं बाहर गयी थी ?' उन्होंने जवाब दिया, 'हाँ, मदर, इसे अभी किसी की कार यहाँ छोड़ गयी है। तीन दिनों से मैं बीमार हूँ, और यह मुझे अकेले छोड़कर चली जाती है। बेबी मम्मी-मम्मी की रट लगाते सो जाता है। मैं बुख़ार में पड़ा इसकी राह ताकता रहता हूँ। परसों यह दस बजे रात को पीकर आयी थी, मैं कुछ न बोला; कल यह बारह बजे आयी थी, मैं चुप रहा; और आज इसे इस हालत में किसी की कार यहाँ दो बजे छोड़ गयी

है। मैं आज अपने को रोक न सका। ओह, मदर, ऐसा कभी न हुआ था, कभी नहीं! अब जाने इसे क्या हो गया है!" और उनकी सिसकियाँ बँध गयीं। तभी उसने ज़ोर की एक हिचकी ली और पड़ी-पड़ी ही बिस्तर पर क़ै करने लगी। उठकर मैंने सँभाला। खुशबुओं में हरदम बसी रहनेवाली उस लड़की को कभी उस ज़लील और गन्दी हालत में भी किसी को देखना पड़ेगा, किसे खबर थी। ज़माना जो न दिखाये, थोड़ा है, मिस्टर गुप्टा........ज़रा एक सिगरेट तो देना।"

मेरी एकाग्रता सहसा ऐसे टूट गयी कि मैं चौंककर बोल उठा, "क्या कहा, मेम साहब?"

"एक सिगरेट।"

मैंने चट सिगरेट का पैकेट उनकी ओर बढ़ाया, तो वह बोलीं, "निकालकर दो।"

वह कुछ पस्त-सी हो रही थीं। मैंने सिगरेट दे, जला दिया। वह सामने जाने क्या देखती मीठे-मीठे कश लेती रहीं।

"तो आपने...." मैंने छेड़ा। ज़रा भी देर मुझे असह्य हो रही थी।

"हाँ, उसे उठाकर मैं बाथ-रूम में ले गयी। उस वक्त मुझमें काफ़ी ताकत थी, मिस्टर गुप्टा। और वह, वह तो फूल की तरह हल्की थी। वह कई बार क़ै कर चुकी, तो मैंने उसे नहलाया, उसके कपड़े बदले। वह अब होश में आ गयी थी। फिर भी मैंने कुछ भी पूछना उस वक्त वाजिब न समझा। लेकिन उसका बेड बदलकर जब मैंने उसे लेटाया, तो जाने क्या हुआ कि वह फूट-फूटकर रोने लगी। उसके हस्बैन्ड की रुलाई फिर तो ऐसे उमड़ पड़ी कि क्या बताऊँ। उन दो तड़पते दिलों की वह पत्थर को हिला देनेवाली रुलाई मेरी बर्दाश्त के बाहर थी। क़रीब था कि या तो मैं वहाँ से भाग खड़ी होती या रो देती कि वह उचककर अपने पलंग से कूदी और अपने हस्बैन्ड से ऐसे लिपट गयी और उन्हें इस तरह पागलों की तरह चूमने लगी, जैसे

बरसों की बिछुड़न के बाद वह उनसे मिली हो और उन्हें अपने में बिलकुल समो लेना चाहती हो। मैं मसलहतन वहाँ से हट गयी। वह मंज़र मैं कभी न भूलूँगी, मिस्टर गुप्ता।"

तभी दरवाज़े पर दस्तक पड़ी और मिस रोज़ की आवाज़ आयी। वह डिनर के लिए ग्रैनी को बुलाने आयी थी। मेज़ पर उसके डैडी इन्तज़ार कर रहे थे। उस वक़्त उसका आना बुरी तरह खल गया।

"माफ़ करो, मिस्टर गुप्ता," कहती हुई मेम साहब उठ खड़ी हुईं। काँखती-कहरती वह दरवाज़े की ओर बढ़कर बोलीं, "बहुत थक गयी। अब ताकत बिलकुल नहीं रही। एक सिगरेट और दो, डिनर के बाद पीऊँगी।"

मैंने बड़े आदर के साथ उन्हें सिगरेट दिया और उनको दरवाज़े तक पहुँचा आया।

वह रात मेरी बड़ी बेचैनी में कटी। कहानी ऐसी जगह टूट गयी थी कि मैं तड़पता रह गया था। खाने के लिए होटल भी न गया। कुछ भी करने को जी न कर रहा था। एक गहरी उदासी, एक ख़ामोश बेकली से तबीयत बिलकुल लस्त हो गयी थी और उत्सुकता ऐसी थी कि किसी पहलू चैन न लेने देती थी। बिस्तर पर पड़ा, तो वह लड़की मेरे दिल-दिमाग़ पर आ छा गयी। मैं उसके बारे में सोचता रहा। आज जैसे मेरी कल्पना की सौन्दर्य की देवी की मूर्ति खण्डित हो गयी थी, आज खुशबुओं की लपटें न थीं, स्कर्ट की सरसराहट और लाल ओंठों की गुनगुनाहट न थी, आज तो जैसे शराब की दिमाग़ को भिन्ना देनेवाली तेज़ गन्ध थी, क़ै की बदबू थी और रुदन की गूँज थी। आज सेन्टों और लवेन्डरों की शीशियाँ नहीं, शराब की बोतलें मेरी आँखों में नाच रही थीं। आज मेरा कमरा किसी परी का शृंगार-कक्ष न रह, जैसे किसी होटल का कमरा हो गया था, जहाँ शराब के उबलते प्यालों में सौन्दर्य और यौवन को इसलिए

बदहोश किया जाता है कि दुनिया से बेख़बर हो चन्द लमहे मज़े लूट लिये जायँ। यह आनन्द की मदहोशी नहीं, बदहोशी का मज़ा होता है। ऐसा अनोखा मज़ा, जो होश में पश्चात्ताप बनकर भी फिर-फिर इन्सान को बदहोश होने को मजबूर करता है। 'छुटती नहीं है काफ़िर मुँह को लगी हुई ! कहीं वह लड़की भी तो........

सुबह चाय बनाकर मेम साहब को बुलाऊँ या न बुलाऊँ, यह सोच ही रहा था कि दरवाज़े से उनकी आवाज़ आयी। मैंने खुश-खुश उनका स्वागत किया। वह शाम से भी ज़्यादा थकी हुई दिखायी दीं। अन्दर आते ही वह बोलीं, "मुझे नींद बिलकुल नहीं आयी, मिस्टर गुप्टा। वह लड़की रात-भर मेरा पीछा करती रही, कई बार तो जी में आया कि तुम्हारे पास आकर उसकी पूरी कहानी सुना दूँ। शायद वैसा कर देने से मुझे कुछ सकून मिल जाता।" कोच पर बैठीं, तो उह-उह कर उठीं।

तो कहानी सुननेवाले की ही तरह शायद कहानी सुनानेवाले को भी बेचैनी होती है। मैंने उन्हें एक प्याली गर्म चाय पिलाकर, दूसरी प्याली उनके सामने रख, एक सिगरेट जला दिया। उनके चेहरे पर कुछ हल्कापन और ताज़गी आ गयी, तो मैंने कहा, "मुझे भी नींद न आयी, मेम साहब," और फिर छेड़ा, "मेरी समझ में न आया कि आख़िर आपके बेटे........"

"बता रही हूँ," कहकर उन्होंने चाय की एक चुस्की ली और एक कश लेकर कहना शुरू किया, "मैंने सोचा था कि रात की उस घटना के बाद सब ठीक हो जायगा। उस लड़की ने अपनी ग़लती मान ली थी। और फिर, मिस्टर गुप्टा, उस रात मैंने जो देखा था, उससे मुझे मालूम हो गया था कि वह लड़की अपने हस्बैन्ड को कितना ज़्यादा प्यार करती थी। दूसरे दिन सुबह जब मेरे हस्बैन्ड और बेटा अपने-अपने आफ़िस चले गये और मैं अकेली अपने कमरे में बैठी स्वेटर

बुन रही थी, तो वह लड़की पागल की तरह भागी-भागी मेरी गोद में आ गिरी और सिसक-सिसककर रोने लगी। मैंने सोचा कि ये उसके पछतावे के आँसू हैं और यह रात के लिए मुझसे माफ़ी माँगने आयी है। इसी लिए मैंने कहा, 'परेशान न हो, मेरी बच्ची! ग़लती किससे नहीं होती? तूने अपनी ग़लती समझ ली, खुदा का शुक्र है।' लेकिन वह चीख पड़ी, 'नो, नो, मदर, यह इतना आसान नहीं, इतना आसान नहीं! मेरी मदद करो, मदर!' और वह फूट-फूटकर रो पड़ी। मैंने चौंककर उसकी ओर ग़ौर से देखा। वह रात के मेरे पहनाये कपड़े ही पहने थी। उसके बिखरे बाल, नीले-से पड़े ओंठ, सूजी आँखें और मुर्झाया चेहरा बता रहे थे कि रात उसने किस बेचैनी से काटी है। उसे उस हालत में देखकर कोई भी न पहचान पाता कि यह वही हमेशा ताज़े खिले फूल की तरह खुशी की खुशबू बिखेरती खूबसूरत लड़की है। मेरा माथा ठनका। मैंने जैसे सहमकर पूछा, 'क्या आसान नहीं है, मेरी बच्ची? तुझे अचानक यह क्या हो गया?'

"वह तड़पकर बोली, 'यही तो मेरी समझ में नहीं आ रहा है, मदर, कि यह अचानक मुझे क्या हो गया। मैं वैसी न थी, मदर, मैं अपने हस्बैन्ड को बहुत, बहुत प्यार करती हूँ। उनके सिवा किसी दूसरे पर कभी आँख न उठायी, कभी किसी ग़ैर का खयाल तक दिल में न आया। लेकिन, लेकिन तीन दिनों से मैं पागल हो गयी हूँ। ओह! मदर, मेरी मदद करो!' और उसने अपने काँपते हाथों से मुँह ढँक लिया।

"उसकी तड़प बता रही थी कि बात बहुत गहरे तक पहुँच गयी है। मेरे तो होश-हवास गुम ही हो रहे थे। इन्सान भी क्या शै है, मिस्टर दुप्टा! मैंने योंही कहा, 'तू उनसे और खुदा से माँफ़ी माँग ले। सच्चे दिल से तोबा कर! खुदा तुझे ज़रूर माफ़ कर देगा!' इस पर वह बड़े ज़ोर से सिर हिलाकर बोली, 'मैं कोशिश करके बिलकुल हार चुकी

हूँ, मदर, मैं बिलकुल बेबस हो गयी हूँ ! उसके वह बोसे ! ओह, मदर ! शराब से भी ज़्यादा नशा है उनमें ! मैं पागल हो जाती हूँ, बेहोश हो जाती हूँ, उसके एक सेकेन्ड के साथ के लिए भी मैं अपनी पूरी ज़िन्दगी क़ुरबान कर सकती हूँ ! ओह, मदर, मैं बयान नहीं कर सकती कि उसमें क्या है ! उसकी एक नज़र मुझे दीवानी बनाने के लिए काफ़ी है, उसके एक इशारे पर मैं जान दे सकती हूँ ! इन तीन दिनों में ही मैं अपना वह सब-कुछ उसके पाँवों में डाल चुकी हूँ, जिस पर सिर्फ़ मेरे हस्बैन्ड का हक़ था। मैं उसके हाथों बेदाम बिक चुकी हूँ, मदर ! काश, तुम मेरी मुश्किल समझ सकती ! ओह, ओह !' और मेरी गोद में सिर पटककर वह सुबकने लगी।

"उसकी रूह की तड़प, दिल की दीवानगी और दिमाग़ की कशमकश देखकर मुझे लगा कि मैं ख़ुद भी पागल हो जाऊँगी। उसे उस हालत में देखकर, उसके दिल-दिमाग़ की हालत समझकर कोई भी होश-हवास खो बैठता, मिस्टर गुप्टा। इसका भला क्या इलाज हो सकता था ? उसको भला कोई क्या मदद दे सकता था ? बड़ी देर तक मैं चुप रही। वह मेरी गोद में पड़ी सुबकती रही। आखिर मैंने पूछा, 'वह कौन है ?'

"उसने मेरी ओर देखते कहा, 'उसका नाम बताने में मुझे कोई शर्म नहीं। वह यहाँ के हाईकोर्ट का एक जज है........'

"मेरे दिमाग़ में जैसे कुछ सन्न-से कर गया। उतावली-सी मैं बोल पड़ी, 'इसमें अलबर्ट का (यही मेरे बेटे का नाम है) भी कोई हाथ है ?'

"उसने साफ़ लफ़्ज़ों में कहा, 'हाँ, लेकिन इसके लिए मैं उन्हें बुरा नहीं कह सकती। बल्कि मैं तो उनकी शुक्रगुज़ार हूँ कि उन्होंने मुझे उससे मिला दिया। मुझे इसका कोई रंज नहीं है, मदर, कि मैंने क्या किया, क्योंकि उसे पाकर मुझे लगता है कि मैंने अपनी रूह को पा लिया है। मुझे रंज है तो सिर्फ़ अपने हस्बैन्ड का। वह कैसे ज़िन्दा

रहेंगे !'

"मैंने बिगड़कर कहा, 'उनकी तुम क्यों परवाह करती हो ? तुमने शायद उन्हें कभी प्यार नहीं किया था !'

"इस पर वह फिर फफक-फफककर रो पड़ी। बोली, 'नो, नो, मदर, ऐसी बात न कहो ! उन्हें मैं बहुत प्यार करती हूँ, लेकिन अब क्या कहूँ, क्या कहूँ ?'

"मैंने पूछा, 'तुम इस जज को कब से जानती थी ?'

"उसने कहा, 'मैं उसे बिलकुल नहीं जानती थी। मिस्टर अलबर्ट ने ज़रूर पहले भी कई बार उसका ज़िक्र किया था, लेकिन उससे मिलने को मैं कभी राज़ी न हुई थी। परसों जाने क्या हुआ कि मैं उन्हें बीमार छोड़कर मिस्टर अलबर्ट के साथ चल पड़ी। और फिर उससे नज़र मिलते ही मैंने ऐसे अपना आपा खो दिया कि उसके एक इशारे पर ही मैं शराब पीने को तैयार हो गयी। तुम जानती हो, मदर, मैं कभी भी न पीती थी। लेकिन मैं क्या बताऊँ कि उसमें क्या है ! ओह, मदर !' और चट से उठ खड़ी हो, रूमाल से मुँह-नाक साफ़ करती वह बोली, 'तुम कुछ नहीं कर सकती, मदर, कोई कुछ नहीं कर सकता ! मैं अपने को खो चुकी हूँ !' और वह जैसे आयी थी, वैसे ही भागी-भागी चली गयी।"

वह चुप हुईं, तो मैंने उठते हुए कहा, "एक प्याली चाय बनाऊँ, मेम साहब ?"

"नहीं, मिस्टर गुप्टा, ज़्यादा चाय अब माफ़िक नहीं आती," वह जँभाई लेती हुई बोलीं, "एक सिगरेट ही और दो।"

मैंने सिगरेट जला दिया, तो कोच पर पीछे की ओर सिर टेक, ऊपर की ओर अधखुली आँखों से कुछ देखती, दो-तीन कश लेकर वह मद्धिम स्वर में वह बोलीं।

"उस दिन उस लड़की से कहीं ज़्यादा मुझे अपने बेटे पर गुस्सा आया, मिस्टर गुप्टा। इन्सान के दिल-दिमाग़ का कोई ठिकाना

नहीं। जैसे शैतान हमेशा उसकी ताक में बैठा रहता है, मौक़ा मिला कि दबोच बैठता है। उस लड़की की ज़िन्दगी में वह मौक़ा मेरे बेटे की वजह से आया था और शैतान ने उसे भी दबोच लिया था।"

"लेकिन," मैंने कहा, "उस लड़की की बातों से तो मालूम होता है कि वह जज से मुहब्बत करने लगी थी........"

मेम साहब इतने ज़ोर से हँस पड़ीं कि सिगरेट उनके हाथ से गिर पड़ा और मुँह-नाक और आँखों से पानी बह चला। फिर खाँसी आ गयी, तो उन्हें हँसी रोकनी पड़ी। रूमाल मुँह पर रख, उबलती हँसी दबा कर, उन्होंने चेहरा साफ़ किया। उनके जर्जर शरीर का सारा ढाँचा ही जैसे हिल गया था। चेहरा तमतमा रहा था, आँखें उबली आ रही थीं, नाक का बाँसा काँप रहा था और नथुने और ओंठ फड़क रहे थे। मैंने फ़र्श से सिगरेट उठाकर, ऐश-ट्रे में बुझाकर, दूसरा सिगरेट बढ़ाया, तो काँपती उँगलियों से पकड़ती हुई वह बोलीं, "अजीब भोले आदमी हो तुम भी, मिस्टर गुप्टा। शराब के प्याले में कहीं मुहब्बत ढलती है? मुहब्बत के लिए दिल का खून दरकार होता है, मिस्टर गुप्टा! क़ुरबानी की ज़मीन से उगकर, आँसू का पानी पीकर और ग़म की खाद खाकर मुहब्बत की बेल परवान चढ़ती है। मुहब्बत खुद वह नशा है, जो रूह तक को अपने में डुबा देता है। उसे किसी और नशे की ज़रूरत नहीं होती मिस्टर गुप्टा!" और मेम साहब ने एक गहरी ठण्डी साँस ली। उनकी आँखों में एक अजीब चमक आ गयी, जैसे कि कोई बहुत पुरानी, प्यारी, पवित्र मीठी बात उन्हें याद आ गयी हो।

मुझे भय हुआ कि अब कहीं मेम साहब अपनी शुरू जवानी की कोई कहानी शुरू न कर दें, इसलिए उस बात को वहीं रोककर, मैंने कहा, "लेकिन मेम साहब, उस लड़की के दिल-दिमाग़ में जो कशमकश चल रही थी, वह कोई मामूली तो थी नहीं। उसकी वह बेचैनी, वह तड़प........"

वह बोल उठीं, "होगा कुछ ! मैं तो कहूँगी कि वह शैतान के चंगुल में फँस गयी थी; खुदा, मज़हब और मुहब्बत को भूल गयी थी।"

उनको फिर बहकते देख मैंने सीधा सवाल किया, "फिर हुआ क्या, मेम साहब ?"

"वही जो शैतान करता है........दूसरी रात को फिर उनके कमरे से वैसी ही चीख की आवाज़ आयी। मैं जग तो गयी, लेकिन वहाँ गयी नहीं। मैंने समझ लिया था कि यह मर्ज़ लाइलाज है। यह घर अब उजड़कर ही रहेगा।"

"आपको जाना चाहिए था, मेम साहब, वह लड़की क़ाबिले रहम थी। जाने किस हालत में...."

"मियाँ-बीवी के बीच तीसरे के पड़ने से मामला और भी बिगड़ जाता है, मिस्टर गुप्टा ! दो दिलों के बीच पड़ी गाँठ खुलनी है, तो उन्हीं के बीच खुलेगी; दो दिलों के राज़ ऐसे नहीं होते, जो तीसरे के सामने नंगे किये जायँ, और अगर कहीं यह नौबत आ गयी, तो समझ लो कि बात बिगड़ गयी। इसी लिए मैंने सोचा कि देखूँ क्या होता है........दूसरे दिन मैंने अपने बेटे से उस जज के बारे में पूछा और उसे डाँटा कि ऐसा उसने क्यों किया। उसने बताया कि जज उस लड़की पर बहुत दिनों से मर रहा था। उसने उन्हें मिला दिया। अब दोनों एक-दूसरे से पागलपन की हद तक मुहब्बत करने लगे हैं। वह भी अंग्रेज़ है, उसके हस्बैन्ड से कहीं ऊँचे ओहदे पर है। अब तो अच्छा यही है कि तलाक लेकर वह जज से शादी कर ले। उसके हस्बैन्ड के लिए भी यही मुनासिब है। ज़बरदस्ती अपने साथ बाँधे रखने से क्या फ़ायदा ?"

"तीन-चार दिनों में ही बात यहाँ तक बढ़ गयी थी !" मैंने पूछा।

"तीन-चार दिन तो बहुत होते हैं, मिस्टर गुप्टा। ज़िन्दगी में ऐसे मोमेन्ट्स (क्षण) भी आते हैं, जो ज़िन्दगी को एक सिरे से ही बदल

देते हैं। और वही हुआ। उनका घर ही बदल गया। वह हँसी-खुशी, वह प्यार-मुहब्बत, वह अमन-चैन हमेशा के लिए खत्म हो गये। एक अजनबीपन, एक खिंचाव, एक सन्नाटा उस घर में छाया रहने लगा। लगता था, जैसे अब कुछ अनहोनी होने ही वाली है, अब कोई बम फटने ही वाला है। मैंने उस लड़की को बुलाकर एक दिन बहुत समझाया। दुनिया, ज़िन्दगी, सोसाइटी के अपने अनुभव उसे सुनाये कि इन तौर-तरीकों के आखिरी अंजाम पछतावे ही होते हैं। यह बहार हमेशा नहीं बनी रहती। उसे कुछ खिजाँ के दिनों की भी फ़िक्र करनी चाहिए। लेकिन उसके कान बहरे हो चुके थे, मिस्टर गुप्टा। वह बैठी बस आँसू चुआती रही। मैंने बहुत मजबूर किया, तो बस वह इतना ही बोली, 'मैं बिलकुल मजबूर हूँ, मदर। मुझे बेहद रंज है लेकिन मैं बिलकुल मजबूर हूँ, मदर। मैं अपना दिल तो चीरकर दिखा नहीं सकती, वर्ना तुम देख सकती कि मैं यह हरगिज़-हरगिज़ न चाहती थी, लेकिन मेरा कोई बस नहीं चलता। मैं बिलकुल मजबूर हूँ, मदर।'

"और एक महीने बाद ही एक दिन उसके बीमार हस्बैन्ड ने सामान पैक कर लिया। वह अपने बेटे को गोद में लिये हमसे रुखसत होने आये। उस वक्त उनके चेहरे पर एक ऐसी खामोश उदासी थी, एक मायूसी की ऐसी गहरी छाप थी कि कोई भी देखकर रो देता। उनसे आँख मिलाना हमारे लिए मुश्किल था। उनके गले से आवाज़ न फूट रही थी। किसी तरह उन्होंने अपना काँपता हाथ मिलाया और कहा, 'मैं इंगलैण्ड जा रहा हूँ। देखिएगा, इस लड़की को कोई तकलीफ़ न हो। मैं उसका खर्च, जब तक वह यहाँ रहेगी, भेजता रहूँगा। गुड बाय।'....मिस्टर गुप्टा, उस वक्त बहुत ज़ब्त करने पर भी मैं रो पड़ने से अपने को रोक न सकी।" कहते-कहते मेम साहब की आवाज़ भर्रा गयी। उन्होंने रूमाल से अपने फड़कते ओंठों को दबा दिया।

मेरे मुँह से भी एक ठण्डी साँस निकल गयी।

उन्होंने ही कहा, "जिस वक्त वह टाँगे पर बैठे हैं, उस लड़की की क्या हालत हुई, मैं क्या बताऊँ? वह पागल की तरह दौड़ती अपने हस्बैन्ड के पास जा उन्हें अन्धाधुन्ध चूमने लगी, और उसके हस्बैन्ड पत्थर के बुत की तरह बैठे रहे। उनकी आँखों से बहते ठण्डे आँसुओं को देखकर कोई भी अपने पर काबू न रख सकता था। हमने सोचा कि अब वह लड़की उन्हें टाँगे से उतार लेगी। लेकिन, मिस्टर गुप्टा, दूसरे ही मिनट वह इतनी तेज़ी से वहाँ से भागी, जैसे उसकी गाड़ी छूट रही हो। फिर उस कमरे से ज़ोर-ज़ोर से रोने की आवाज़ आयी और इधर टाँगा चल पड़ा।"

"आखिर वह बसा-बसाया घर उजड़ कर ही रहा। मैं तो सोचता था........"

बीच ही में मेम साहब बोल पड़ीं, "नहीं, मिस्टर गुप्टा, इसका नतीजा इसके सिवा दूसरा हो ही नहीं सकता था।....लेकिन उसके बाद उस लड़की के चेहरे पर फिर कभी वह चमक, मुस्कराहट दिखायी न दी। वह दिन-भर अपने कमरे में उदास पड़ी रहती, कभी रोती, कभी सिस-कती। लेकिन जैसे ही शाम होती, जाने उसे क्या होता कि वह एक मशीन की तरह तेज़ी से सज-सँवरकर बाहर निकल जाती। सेन्टों की शीशी वह अब भी उड़ेलती थी, लेकिन उस खुशबू में जैसे ज़िन्दगी न रह गयी हो, ऐसा लगता था, जैसे काग़ज़ के फूलों पर अपने और दूसरों को धोखा देने के लिए सेन्ट छिड़का गया हो। फिर बड़ी रात गये उसे कोई कार छोड़ जाती थी। कई हफ्ते जब इसी तरह गुज़र गये, तो एक दिन मैं उसके पास गयी। समाज में चारों ओर उसकी बड़ी भद्द उड़ रही थी। लोग मुझसे पूछते थे कि अब वह जज से शादी क्यों नहीं कर लेती? क्यों एक फ़ाहशा की तरह क्लबों और होटलों में उसके साथ अपने को बदनाम कर रही है? इस तरह कब तक चलेगा? इसमें

मेरी भी बदनामी थी, मिस्टर गुप्टा। लोगों को मालूम हो गया था कि यह सब मेरे बेटे की ही वजह से हुआ था। मेरे बेटे की इधर तरक्की भी हो गयी थी। मैंने उस लड़की से साफ़ लफ्ज़ों में कहा, 'तुम अब शादी क्यों नहीं कर लेती? इस तरह अपने को बदनाम क्यों कर रही हो?' उसने तुरन्त कोई जवाब न दिया। कई रंग उसके झुके चेहरे पर आये-गये। मैंने फिर अपना सवाल दुहराया, तो वह धीमी आवाज़ में बोली, 'अभी मैं शादी कैसे कर सकती हूँ? हमारा तलाक अभी कहाँ हुआ है?' मुझे ताज्जुब हुआ। मैंने कहा, 'तुमने तलाक क्यों नहीं ले लिया?' वह सिर झुकाये ही ठण्डी साँस लेकर बोली, 'मैंने उनसे सब-कुछ साफ़-साफ़ कह दिया था, मदर। वह कितने नेक, रहमदिल आदमी हैं, मैं तुमसे क्या बताऊँ। सब-कुछ समझकर उन्होंने तय किया कि हमें इंगलैण्ड चले जाना चाहिए। वहाँ जाकर शायद मेरे सिर का भूत उतर जाय। मैं भी तैयार हो गयी। लेकिन जाने के दिन फिर मेरा दिमाग़ बदल गया। मैं जा न सकती थी, मदर! मैं कितनी मजबूर हूँ, तुमसे बता चुकी हूँ। मेरे दिल-दिमाग की ऐसी हालत कभी नहीं हुई थी। मैंने जब अपनी मजबूरी ज़ाहिर की, तो वह बोले, लेकिन ऐसे तो मैं अब एक सेकेन्ड भी नहीं जी सकता। मुझे फिर अकेले ही जाना पड़ेगा। मैं उनकी हालत भी समझती हूँ, मदर। वह मुझे बहुत प्यार करते हैं। उनके दिल पर जो गुज़र रही थी, उसका अन्दाज़ मुझे था। आखिर वह बोले, तुम्हें तीन महीने का वक्त देता हूँ, इस बीच तुम्हारे होश ठिकाने आ जायँ, तो मुझे ख़बर देना, वर्ना खुदा तेरी हिफ़ाज़त करे! और वह चले गये। मेरा घर वीरान हो गया। यहाँ की हर चीज़ मुझे काटने दौड़ती है। हर चीज़ से उनकी और बेबी की याद ताज़ी हो जाती है। दिन-भर मैं उन्हें याद कर-करके रोती रहती हूँ, लेकिन शाम होते ही जैसे मुझ पर एक वहशत तारी हो जाती है। मैं सब-कुछ भूल जज के पास पहुँचने को तड़प उठती हूँ। उसने मुझ पर जादू कर

दिया है, मदर ! उसके साथ का मेरा हर सेकेन्ड जैसे बहिश्त में गुज़रता है। मुझे अपना बिलकुल होश नहीं होता है। सुबह जब नींद खुलती है तो जैसे वह जादू टूट जाता है। और फिर मैं रोने लगती हूँ। जाने क्यों, मेरे दिल में एक दहशत समा गयी है कि मेरी ज़िन्दगी में कोई बड़ी ही खौफनाक बात होनेवाली है।' और वह मेरी गोद में सिर डाल फफक-फफककर रो पड़ी। अब उससे मैं क्या कहती ? खुदा न करे कि वैसी हालत में कोई दुश्मन भी पड़े, मिस्टर गुप्टा ! दरअसल एक शैतान उसे दोजख़ की आग में जला रहा था और वह कुछ समझ न पा रही थी। और तीन महीने इसी तरह बीत गये।"

"इस बीच उसके हस्बैन्ड का कोई खत-वत नहीं आया ?" मैंने पूछा।

"मुझे नहीं मालूम। लेकिन तीन महीने बीतने के तीन दिन बाद एक रात को तारवाले की पुकार मुझे सुनायी दी। मैंने बाहर आकर बरामदे की लाइट जलायी। तार लेकर देखा, तो वह उस लड़की के पते पर था। वह अभी तक जज के यहाँ से नहीं लौटी थी। मैंने दस्तख़त करके तार ले लिया। फिर सोचा कि उसके कमरे में डाल दूँ, लेकिन फिर ख़याल आया कि क्यों न खोलकर देखूँ, शायद उसके हस्बैंड का हो। मुझसे रहा न गया। मैंने खोलकर आखिर पढ़ना शुरू ही किया था कि तार मेरे हाथ से छूटकर गिर गया और ऐसा लगा, जैसे मेरे दिल की धड़कन ही बन्द हो जायगी। मैं हाथों में सिर डाले वहीं कुर्सी पर बैठ गयी।"

"उसमें क्या था, मेम साहब ?"

"उसके हस्बैन्ड के एक रिश्तेदार ने उस लड़की को खबर दी थी कि उसके हस्बैन्ड ने पिछली रात पिस्तौल से खुदकुशी कर ली। बेबी ठीक है।"

"ओफ़ !" मेरे मुँह से निकल गया।

थोड़ी देर के लिए सन्नाटा छा गया। अपने काँपते हाथों से मेम

साहब ने खुद ही एक सिगरेट निकाल कर जलाया। एक हल्का कश लेकर उन्होंने मुँह ऐसे खोल दिया, जैसे धुआँ फेंकने की भी शक्ति उनमें न हो। फिर ओंठों में ही बोलीं।

"मैंने अन्दर जा अपने हस्बैन्ड को जगाया और उनके हाथ में तार देकर कहा कि उसे खबर कर देनी चाहिए। उस वक्त बारह बजे थे। मेरे हस्बैन्ड ने कहा कि जाने इस वक्त कहाँ होगी। उसके आने का इन्तज़ार करना ही बेहतर है। मेरे हस्बैन्ड को उस लड़की से कोई हमदर्दी न थी। वह बार-बार यही कहते रहे कि इस कम्बख्त लड़की ने उस बेचारे की जान ले ली। उन्हें इसके बारे में खास कुछ मालूम न था। वह अक्खड़ और सख़्त क़िस्म के फ़ौजी आदमी थे। मुझे डर लगा कि कहीं यह उस लड़की के साथ सख़्ती से पेश न आयें। इसलिए मैंने यह कहकर उन्हें सो जाने को कहा कि हमें दूसरों की बातों से क्या मतलब, और वह सचमुच सो गये। मेरी बात वह कभी नहीं टालते थे। आख़िर दो बजे के क़रीब कार की आवाज़ आयी। मैंने दरवाज़े से झाँककर देखा, एक आदमी उस लड़की को गोद में लिये पीछे की सीट से उतरा और उसके दरवाज़े की ओर बढ़ गया। मेरे बरामदे की रोशनी जल रही थी, शायद इसलिए मुड़कर एक बार मेरी ओर भी देखा। थोड़ी देर के बाद जब कार जाने की आवाज़ दूर हो गयी, तो मैं अपने कमरे में से निकली। उसका दरवाज़ा भिड़ा था। खोलकर उसके सोने के कमरे में गयी। बिस्तर पर वह आराम से लेटा दी गयी थी। कमरे में शराब की तेज़ बू भरी थी। वह क्या से क्या हो गयी थी! मुझे रोना भी आया और हैरत भी हुई। होश में आने पर जब उसे मालूम होगा कि उसके हस्बैन्ड ने खुदकुशी कर ली, तो जाने उसे खुशी होगी या........मैंने तार उसके सिरहाने रख दिया। लौटने लगी, तो वह बड़बड़ायी, मैं 'मजबूर हूँ....मैं मजबूर हूँ....' मैंने पलटकर एक बार उसे और देखा। उसके दिल-दिमाग़ के कशमकश जैसे

बेहोशी में भी उसे चैन न लेने दे रहे थे।.......उस रात मैं सो न सकी। मुझे जाने क्यों यह लग रहा था कि इस लड़की को जाने कब मेरी ज़रूरत पड़ जाय। लेकिन जब सुबह हुई और फिर आठ भी बज गये, तब भी कोई आहट न मिली, तो मैं फिर एक बार उधर जाने से अपने को रोक न सकी। उसका बावर्ची चूल्हे पर चाय की केटली चढ़ाये जाने कब से मेम साहब के जगने का इन्तज़ार कर रहा था। वह पुराना बूढ़ा बावर्ची था। इंगलैण्ड जाते वक्त साहब उसे ताक़ीद कर गये थे कि मेम साहब को कोई तकलीफ़ न हो। वह दिन-भर वहीं रहता था। रात को छुट्टी पा वह अपने घर चला जाता था और सुबह तड़के आकर बेड-टी देता था। उसने इशारे से ही मुझसे पूछा, यह मेम साहब को क्या हो गया है? मैंने उसका कोई जवाब न दे, पूछा, 'मेम साहब नहीं उठीं?' उसने बताया कि जब से साहब गये, मेम साहब दस बजे के पहले नहीं उठतीं। फिर उसने पूछा, 'साहब क्या अब बिलकुल ही नहीं आयेंगे?' मैंने जब साहब के बारे में बताया, तो वह एकदम सिर थामकर रो पड़ा और कहने लगा, वैसा नेक साहब ज़िन्दगी में मुझे एक भी न मिला, मेम साहब! मैंने बीसियों के यहाँ नौकरी की, लेकिन....' और फिर वह फूट-फूटकर ज़ोर से रो पड़ा। तभी अन्दर से एक ऐसी तेज़ चीख की आवाज़ आयी, जैसे किसी की जान लेकर निकल गयी हो। मैं भागी-भागी उसके सोने के कमरे में गयी, तो देखा कि तार उसके बेजान-से हाथ में पड़ा था और वह बेहोश होकर लुढ़क गयी थी। मैंने उसे अपनी गोद में उठा, उसके कपड़े ठीक-ठाक कर बावर्ची को पुकारा। बावर्ची पर्दे के पीछे ही बिलखता खड़ा था। उससे पानी माँगकर मैंने कई छींटे दिये, तो होश में आ उसने आँखें खोलीं और इधर-उधर एक बार देखकर वह फिर बड़े ज़ोर से चीखी और फिर बेहोश हो गयी। कई बार ऐसा ही हुआ, तो बावर्ची की मदद से मैंने उसका बिस्तर बदला और उसे डाक्टर लाने को भेज

दिया। मुझे डर हो गया कि इस धक्के को सँभाल न पा कहीं यह भी न चल बसे। फिर अपने लड़के को सब बताकर जज के यहाँ भेजा।

"डाक्टर आया, तो मैंने उसे सारा हाल बताया। उसने तुरन्त इन्जेक्शन दिया और मरीज़ को बिलकुल चुपचाप पड़े रहने की ताक़ीद कर, एक घण्टे बाद फिर आने को कहकर चला गया। मेरे पूछने पर उसने बताया कि केस नाज़ुक है, दिल-दिमाग़ दोनों पर बड़ा ही गहरा धक्का लगा है। डर है कि कहीं पागल न हो जाय। बहुत एहतियात की ज़रूरत है। मरीज़ को कतई न छेड़ा जाय।'

"जज साहब की कोई खबर न मिली। मेरा बेटा भी लौटकर न आया। वह बाहर-ही-बाहर दफ्तर चला गया था। एक-एक घण्टे में आ-आकर डाक्टर इन्जेक्शन देता रहा। वह बेहोशी में शान्त पड़ी रहती और जब आप ही होश आता, तो वहशत-भरी आँखों से एक बार इधर-उधर देखकर बड़े ज़ोर से एक चीख मारती और फिर बेहोश हो जाती। ऐसा लगता था, जैसे होश आने पर वह किसी को खोजती हो। मुझे ऐसा ख़याल हुआ कि शायद यह जज को खोज रही हो। मुझे जज पर उस वक्त बेहद ग़ुस्सा आ रहा था कि इसकी ऐसी हालत की खबर पाकर भी वह, जिसके कारण यह इस नौबत को पहुँची थी, न आया। इसी तरह बेहोशी, होश और चीख के बीच दिन बीत गया। शाम होने को आयी तो मैंने सोचा कि शायद यह इस वक्त ठीक हो जाय, क्योंकि जज से मिलने वह रोज़ इसी वक्त तैयार होकर जाया करती थी। यह वक्त उसके लिए वह होता था, जब वह एक जादू की ताक़त से खिंचती हुई चली जाती थी। जाने क्यों मुझे विश्वास था कि उस वक्त वह जज से मिलने को सब-कुछ भूलकर हमेशा की तरह ज़रूर तड़प उठेगी, अपने हस्बैन्ड को भी भूल जायगी। उस वक्त ऐसा ही होता है, उसने मुझे कई बार बताया था। बेहोश होने पर भी उसकी रूह उस वक्त न तड़पेगी, ऐसा कैसे हो सकता है? आख़िर बेहोशी के

नीचे एक होश तो होता ही है, मिस्टर गुप्टा। यह बात दिमाग़ में आते ही मुझे बहुत ज़्यादा उम्मीद हो गयी कि वह इस वक्त जज से मिलते ही ज़रूर ठीक हो जायगी। मुझे ग़ुस्सा आ रहा था कि जज ही इस वक्त क्यों नहीं आ जाता? मेरा बेटा भी अभी तक न लौटा था।

"और सचमुच जैसे ही दीवार की घड़ी ने पाँच बजाये कि वह होश में आ उठकर ऐसे बैठ गयी, जैसे मुर्दा अचानक जीकर उठ बैठा हो। मेरा दिल धड़क उठा। उसने मेरी ओर अजीब हैरत और वहशत से आँखें नचाकर कहा, 'तुम यहाँ क्यों बैठी हो?' मैं उसका क्या जवाब देती? सहमकर खड़ी होती मैं बोली, 'मैं जा रही हूँ, माफ़ करना।' और मैं अभी दरवाज़े तक भी न पहुँची थी कि वह नीचे उतरने की कोशिश में फ़र्श पर गिर पड़ी। मैं बहुत डर गयी थी। फिर भी उसे उस हालत में कैसे छोड़ सकती थी? मैंने लपककर उसे उठा पलंग पर लेटा दिया। उसे इस वक्त पूरा होश था। वह बोली, 'शुक्रिया, मदर, मालूम नहीं, मैं इतनी कमज़ोर कैसे हो गयी?' तो इस वक्त वह सब-कुछ भूल चुकी थी। डर के मारे मेरा दिल धक-धक कर रहा था। ऐसी हैरत की बात मैंने कभी न देखी, न सुनी। वहाँ अकेले बैठना मेरे लिए बहुत मुश्किल हो रहा था। बावर्ची से कहकर मैंने अपने हस्बैन्ड को बुलवा भेजा। वह मुट्ठी बाँधकर जैसे अपनी ताकत का अन्दाज़ा कर बोली, 'लेकिन मुझे ज़रूर जाना है, मदर! ज़रा उस बक्स से कपड़े तो उठा दो। मैं गये बग़ैर नहीं रह सकती। एक टाँगा भी मँगा दो।' मैंने समझाया, तुम बहुत कमज़ोर हो गयी हो। मैं जज साहब को बुलाये देती हूँ।' इस पर वह आँखें गुरेरकर बोली, 'नहीं, वह इस घर में पाँव नहीं रख सकता! मैंने मना कर रखा है। मुझे ही जाना पड़ेगा।'

"अपने हस्बैन्ड को पर्दे के पीछे दरवाज़े पर बैठाकर मैंने बावर्ची को टाँगा लाने को भेज दिया, फिर उसे दिखा-दिखाकर, उसकी पसन्द के कपड़े निकालकर उसके पास रख दिये। उसने पहले खुद कपड़े बदलने

की कोशिश की। लेकिन जब न कर सकी, तो मैंने, जैसे-जैसे वह कहती गयी, पहना दिये। फिर उसके बाल ठीक किये। आखीर में उसने लवेन्डर की शीशी माँगी। नयी शीशी खोलकर मैंने उसके हाथ में थमा दी। उसने पूरी-की-पूरी शीशी अपने काँपते हाथों से कपड़ों पर उँडेलकर कहा, ''अब मैं जाऊँगी, देर हो रही है।' मैंने सोचा कि इस वक्त इसका जाना ही बेहतर है। न होगा तो अपनी गोद में उठा कर ही इसे टाँगे में बिठा दूँगी। उसे ज़रा रुकने को कह, टाँगा देखने मैं बाहर आयी कि तभी जज की कार फाटक से अन्दर आ खड़ी हो गयी। मेरा बेटा भी साथ था। उनके उतरते ही मैंने सब-कुछ बता कर कहा, 'अच्छा हुआ आप आ गये। वह आपके यहाँ जाने को बेचैन है, आप आइए और उसे सँभालिए। मैं तो परेशान हो गयी।' वह जल्दी न आ सकने के लिए माफ़ी माँगते और परेशानियों के लिए अफ़सोस ज़ाहिर करते, मेरे पीछे-पीछे उसके कमरे में दाखिल हुए। और, मिस्टर गुप्टा, उसकी नज़र उन पर पड़नी थी कि उसकी आँखों में एक बिजली चमकी और वह एक भूखी शेरनी की तरह उछलकर, दोनों पंजों को उठाये जज की ओर ऐसे झपटी कि लगा, जैसे उनका गला ही दबोच देगी। यह ऐसी अनहोनी और हैरतअंगेज़ बात थी कि मैं तो ठक रह गयी। जज ने ज़ोर लगाकर अपने गले से उसके पंजे छुड़ाये, तो एक खूँख्वार की तरह उसने उनके हाथ पर दाँत जमा दिये। आखिर जज ने उसे धक्का दे पलंग पर गिरा दिया और यह कहते हुए बाहर भाग खड़े हुए कि यह तो पागल हो गयी है। उनके बाहर जाते ही उसने इतने ज़ोर का क़हक़हा लगाया कि सारा घर ही काँप उठा और दूसरे ही छन उसके चेहरे और आँखों के सब रंग उड़ गये, जैसे कि उसे न कोई ग़म रह गया हो, न खुशी। अब वह कभी क़हक़हे लगाने लगी और कभी रोने लगी। वक्त पर डाक्टर आया, तो उसकी यह हालत देखकर मेरी ओर देखा। मैंने बाहर ले जाकर सब बताया, तो वह बोला,

किसी को भी उसके पास नहीं जाने देना चाहिए था। मैंने कहा था कि उसे बिलकुल ही न छेड़ा जाय। लेकिन आपने ख़याल न किया। आख़िर मुझे जो डर था वही हुआ। इसका दिमाग़ ख़राब हो गया, यह पागल हो गयी। दो-चार दिन देखकर इसे कहीं बाहर भेज देना ही बेहतर है। जगह बदल देने से शायद कुछ अच्छा असर हो। जज साहब से कह दें कि वह कभी इसके सामने न आयें। और जब इन्जेक्शन देने के लिए डाक्टर ने उसकी बाँह पकड़ी, तो वह ज़ोर से खिल-खिलाकर हँस पड़ी।"

"तो वह सचमुच पागल हो गयी थी, मेम साहब?" मैंने कहा।

"बिलकुल, मिस्टर गुप्टा। उस हालत में जब मेरे सिवा उसकी ख़बर लेनेवाला कोई न था, वह मेरे लिए एक मुश्किल बन गयी। मैंने इंगलैण्ड तार भेजने वाले को ख़बर दी, लेकिन उसका कोई जवाब न आया। जज से उसे किसी 'मेंन्टल अस्पताल' में भेज देने का इन्तज़ाम करने के लिए कहने गयी, तो उन्होंने 'हाँ' तो कर ली, लेकिन यह भी बताया कि उन्हें उससे बड़ा डर लग रहा है, वह ख़ुद भी यह जगह जल्द ही छोड़ देने की सोच रहे हैं। और आख़िर उस वाक़ये के सात दिन बाद ही एक दिन सुबह यह ख़बर मिली कि वह लड़की पुलिस हवालात में है। रात को जज साहब के बँगले के हाते में वह छुरा लिये पकड़ी गयी थी। जज ने बयान दिया था कि, हाँ, उन्हें उससे ख़तरा था। वहीं से वह राँची भेज दी गयी। एक साल के अन्दर ही जज साहब भी इंगलैण्ड चले गये। मेरे बेटे की शादी हो गयी। इस पूरे बंगले और सारे समान पर हमारा क़ब्ज़ा हो गया। पाँच साल बाद मेरे हस्बैन्ड का इन्तक़ाल हो गया।"

"उस लड़की के बारे में फिर कोई ख़बर नहीं मिली, मेम साहब?"

"एक बार कलकत्ते के मेरे एक रिश्तेदारने लिखा था कि वह लड़की

सड़कों पर मारी-मारी फिर रही है। बम्बई से भी एक बार ऐसी ही खबर मिली थी। फिर बरसों उसकी कोई खबर न मिली। अब एक महीना हुआ, इसी शहर में आ गयी है। मेरे लड़के ने बताया था कि अब शराब ही उसकी ज़िन्दगी हो गयी है, वह शराब के लिए होटलों और क्लबों में चक्कर लगाया करती है। उस पर तरस खाकर लोग उसे पिला देते हैं। जब कोई पिलानेवाला नहीं मिलता, तो वह भीख माँगकर देशी शराब पीती है और बेहोश होकर सड़क पर लुढ़क जाती है। एक दिन वह यहाँ भी आयी थी। उसकी हालत देखकर मुझे रोना आ गया। अपने जिस्म की भी उसे अब कोई परवाह नहीं रही। मैंने अपने घर में उसे ठहरने को कहा, तो वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। वह शायद अब कोई बात नहीं समझती। फिर रोने लगी और पीने के लिए शराब माँगने लगी। मैं उसे एक रुपया देने लगी, तो मेरा बेटा डाँटने लगा कि मम्मी उसे शराब पीने के लिए रुपया क्यों दे रही हो। वह ठर्रा पीकर कहीं नाली में लुढ़क जायगी। लेकिन उसे क्या मालूम कि हम उसके कितने कर्ज़दार थे। उसका हज़ारों का सामान अब भी इस बंगले में है। अगर मेरे पास रुपया होता, तो मैं उसे रोज़ शराब पिलाती। वह क्या थी और क्या हो गयी है, सोचकर कोई भी उस पर तरस खाये बिना कैसे रह सकता है?" कहकर वह उठीं, तो मेरे मुँह से शिष्टाचार का एक शब्द भी न निकल सका।

दिन-भर तबीयत बेहद उदास रही। उस लड़की की करुण कहानी दिल-दिमाग़ को एक भारी बोझ की तरह दबाये रही। शाम को कमरे में वापस आया, तो कमरा जैसे भाँय-भाँय कर रहा था। कमरे में बैठने को जी न कर रहा था। सोचा, कहीं घूम आऊँ। फिर ख़याल आया, क्यों न मेम साहब को ही बुला लूँ। उनके साथ थोड़ा वक्त कट जायगा। उनके कमरे के सामने जाकर पुकारा, तो उनके बूढ़े बावर्ची ने आकर कहा कि वह कहीं बाहर गयी हैं। क्या करता, बहुत देर तक मन

मारे बैठा रहा और उस लड़की को लेकर उलझा रहा। किसी भी तरह उसकी बातें मन से हटाये न हटती थीं। फिर बिस्तर पर पड़कर कई किताबें उलटता रहा। उचटे मन से उलटते-उलटते जाने कब आँखें झपकीं, तो अचानक एक ऐसा अट्टहास कानों पर आ बजा कि चिहुँक कर मैंने आँखें खोल दीं। सहमी आँखों से इधर-उधर देखा, दरवाज़े की ओर देखा, तो ऐसा भास हुआ, जैसे खुले दरवाज़े से एक छाया-सी निकल गयी हो, लपककर बाहर रोशनी की। लेकिन कहीं कुछ न था, चारों ओर एक ठण्डा सन्नाटा छाया हुआ था। अपने पर ही हँसी आ गयी। यह मन भी क्या अजीब चीज़ है! हवा में भी यह क्या-क्या रंग पैदा कर लेता है! दरवाज़ा बन्द कर घड़ी की ओर देखा, तो बारह बजकर बीस हो चुके थे। रोशनी जलती ही छोड़ लेहाफ़ में मुँह ढँक पड़ गया। नींद न आनी थी, न आयी। बस, अर्द्ध-निद्रा और दिमाग़ की थकान की एक गहरी खुमारी लिये चुपचाप पड़ रहा और मन के पर्दे पर तरह-तरह के दृश्य चलते रहे। कभी कोई गुनगुनाहट, कभी लाल ओंठों की सीटी की आवाज़, कभी किसी गीत की एक कड़ी, कभी खिलखिला-हट, कभी रुदन, कभी अट्टहास और कभी चीख और कभी फ़र्श पर चलते दो पाँव, कभी स्कर्ट की सरसराहट, कभी रेशमी बालों की लहरों से खेलता कँघा, कभी पफ़ और पाउडर, कभी रूज और लिपस्टिक, कभी लेवेन्डर और सेन्ट की खुशबू, कभी सड़क पर खुशबू की आँधी उड़ाती एक खूबसूरत युवती, कभी नशे में बुत किसी की गोद में खोयी एक बेचैन रूह, कभी अपने घर में पति और बच्चे के बीच खड़ी मुस्कुराती एक वफ़ादार बीवी, कभी एक अबस, विमोहित-विमुग्ध नारी, कभी दोराहे पर खड़ी एक विभ्रान्त नायिका, कभी संघर्ष की आँधी में घिरा एक कोमल प्राण—और अन्त में एक लुटी औरत की आत्मा को कँपा देनेवाली एक चीख और अट्टहास। फिर जाने कब अँधेरे का पर्दा मन पर आ गिरा और मुझे बेहोशी की नींद आ गयी।

"वन चिप, डैडी, वन चिप !" और फिर रुदन के स्वर में लिपटे हुए, अस्पष्ट-से, धारा-प्रवाह अंग्रेज़ी के वाक्य इस तरह मेरे कानों पर आ बजे कि मैं जगकर उठ बैठने को विवश हो गया।

कुछ घण्टों के लिए जो लड़की मेरे दिमाग़ से उतर गयी थी, अचानक यह याचना की करुण पुकार कान में पड़ते ही फिर याद आ गयी। ख़याल आया कि कहीं यह वही न हो। पागल की भी तो एक तलब होती है और तलब वह चीज़ है, जो आदमी को पागल बना देती है। शायद अपनी तलब से मजबूर होकर ही इस घर में एक समय रानी बनकर रहनेवाली सुन्दरी आज इसी घर भिखारिन की तरह एक रुपये की भीख माँगने आयी हो। वह कोई साधारण भिखारिन तो थी नहीं कि एकाध पैसे के लिए ज़बान गिराये। उसे दाने-दुनके की चिन्ता नहीं, शराब की चिन्ता है....शायद नशे की बेहोशी में ग़मों को डुबो देने के लिए।

मैंने तुरन्त उठकर दरवाज़ा खोला। बरामदे की रोशनी जल रही थी। रात को बुझाना मैं भूल गया था। सामने रिक्शे में बैठी एक बूढ़ी औरत काँप रही थी। माथे पर बिखरे बाल, सफ़ेद बालों के नीचे गढ़ों में धँसी आँखों से पिचके गालों पर बहते आँसू साफ़ दिखायी दे रहे थे। शरीर पर एक फटा कोट था, जिसके गरेबाँ को बायें हाथ से पकड़े वह सर्दी और नंगेपन से बचने की व्यर्थ कोशिश कर रही थी। नंगी टाँगों को एक-दूसरे पर चढ़ाये, दाहिना हाथ सामने फैलाये वह रुदन के स्वर में बोले जा रही थी, "वन चिप डैडी, वन चिप...."

मैंने उसे ग़ौर से देखने की कोशिश की, तो मन जाने कैसा हो गया कि आँखें ठहर न सकीं। जल्दी से पाँच रुपये का एक नोट निकालकर मैं उसे देने लगा, तो मेम साहब की आवाज़ आयी, "क्यों उस इंडियन के सामने हाथ फैला रही है ? इधर आओ !"

अजीब ऐंग्लोइंडियन हैं यह मेम साहब भी ! मुझे ऐसा गुस्सा आया

कि क्या बताऊँ। तभी उस बूढ़ी औरत ने नोट मेरे हाथ से छीन, छाती के पास छिपाते हुए रिक्शेवाले को चलने का हुक्म दिया। रिक्शा मेम साहब के पास से गुज़र गया, तो गुस्से के बावजूद भी मैं यह पूछने से अपने को न रोक सका, "मेम साहब, यह........"

"यह एक पादरी की माँ है। शराब की इसे ऐसी बुरी लत है...."

"ओह, तो यह वह नहीं थी?" मेरे मुँह से बीच ही में निकल गया।

"कौन?" वह ज़रा रुककर बोलीं, "वह लड़की?....ओह, मिस्टर गुप्टा, तुम्हें नहीं मालूम, वह तो कल शाम को मर गयी!"

"मर गयी?" मेरे मुँह से एक चीख़-सी निकल गयी।

"हाँ, कल शाम को अस्पताल से खबर पाकर मैं गयी थी। वह जज जिस बंगले में रहते थे, उसी के सामने वह किसी की कार के नीचे आ गयी थी।

"अस्पताल में पहुँचने के एक घण्टे बाद ही वह मर गयी। लेकिन, मिस्टर गुप्टा, आखिरी वक्त में शायद वह अपने पूरे होश में आ गयी थी। आँखें फाड़े, ख़ामोश निगाहों से देखते, लड़खड़ाती ज़बान पर बस एक ही बात लिये उसने दम तोड़ दिया, 'आएम गोइंग टु मीट माइ हस्बैन्ड' (मैं अपने पति से मिलने जा रही हूँ)! आख़िर मरते वक्त...."

मुझ से आगे न सुना गया।

धनिया की साड़ी

लड़ाई का ज़माना था, माघ की एक साँझ। ठेलिया की बल्लियों के अगले सिरों को जोड़नेवाली रस्सी से कमर लगाये रमुआ काली सड़क पर खाली ठेलिया को खड़खड़ाता बढ़ा जा रहा था। उसका अधनंगा शरीर ठंडक में भी पसीने से तर था। अभी-अभी एक बाबू का सामान पहुँचाकर वह डेरे को वापस जा रहा था। सामान बहुत ज़्यादा था। उसके लिए अकेले खींचना मुश्किल था, फिर भी, लाख कहने पर भी, बाबू ने जब नहीं माना, तो उसे पहुँचाना ही पड़ा। सारी राह कलेजे का ज़ोर लगा, हुमक-हुमककर खींचने के कारण उसकी गरदन और कनपटियों की रगें मोटी हो-हो उभरकर लाल हो उठी थीं, आँखें उबल आयी थीं और इस-सबके बदले मिले थे उसे केवल दस आने पैसे!

तर्जनी अँगुली से माथे का पसीना पोंछ, हाथ झटककर उसने जब फिर बल्ली पर रखा, तो जैसे अपनी कड़ी मेहनत की उसे फिर याद आ गयी।

तभी सहसा पों-पों की आवाज़ पास ही सुन उसने सिर उठाया,

तो प्रकाश की तीव्रता में उसकी आँखें चौंधिया गयीं। वह एक ओर मुड़े-मुड़े कि एक कार सर् से उसकी बग़ल से बदबूदार धुआँ छोड़ती हुई निकल गयी। उसका कलेजा धक-से रह गया। उसने सिर घुमाकर पीछे की ओर देखा, धुएँ के पर्दे से झाँकती हुई कार के पीछे लगी लाल बत्ती उसे ऐसी लगी, जैसे वह मौत की एक आँख हो, जो उसे गुस्से में घूर रही हो। 'हे भगवान्!' सहसा उसके मुँह से निकल गया, 'कहीं उसके नीचे आ गया होता, तो?' और उसकी आँखों के सामने कुचलकर मरे हुए उस कुत्ते की तस्वीर नाच उठी, जिसका पेट फट गया था, अँतड़ियाँ बाहर निकल आयी थीं, और जिसे मेहतर ने घसीट-कर मोरी के हवाले कर दिया था। तो क्या उसकी भी वही गत बनती? और ज़िन्दा रहकर, दर-दर की ठोकरें खानेवाला और बात-बात पर डाँट-डपट और भद्दी-भद्दी गालियों से तिरस्कृत किये जानेवाला इन्सान भी अपने शव की दुर्गति की बात सोच काँप उठा, 'ओफ़! यहाँ की मौत तो ज़िन्दगी से भी ज़्यादा ज़लील होगी!' उसने मन-ही-मन कहा और यह बात खयाल में आते ही उसे अपने दूर के छोटे-से गाँव की याद आ गयी। वहाँ की ज़िन्दगी और मौत के नक्शे उसकी आँखों में खिंच गये! ज़िन्दगी वहाँ की चाहे जैसी भी हो, पर मौत के बाद वहाँ के ज़लीलतरीन इन्सान के शव को भी लोग इज़्ज़त से मरघट तक पहुँ-चाना अपना फ़र्ज़ समझते हैं! ओह, वह क्यों गाँव छोड़कर शहर में आ गया? लेकिन गाँव में........

"ओ ठेलेवाले!" एक फ़िटन के कोचवान ने हवा में चाबुक लहराते हुए कड़ककर कहा, "बायें से नहीं चलता? बीच सकड़ पर मरने के लिए चला आ रहा है? बायें चल, बायें!" और हवा में लहराता हुआ उसका चाबुक बिलकुल रसुआ के कान के पास से सन-सनाहट की एक लकीर-सा खींचता निकल गया।

विचार-सागर में डूबे रसुआ को होश आया। उसने शीघ्रता से

ठेलिया को बायीं ओर मोड़ा।

लेकिन रमुआ की विचार-धारा फिर अपने गाँव की राह पर आ लगी। वह ऐसी ज़िन्दगी का आदी न था। जोतता, बोता, पैदा करता और खाता था। फिर उसे वे सब बातें याद हो आयीं, जिनके कारण उसे अपना गाँव छोड़कर शहर में आना पड़ा। लड़ाई के कारण ग़ल्ले की क़ीमत अठगुनी-दसगुनी हो गयी। गाँव में जैसे खेतों का काल पड़ गया। ज़मींदार ने अपने खेत ज़बरदस्ती निकाल लिये। कितना रोया-गिड़गिड़ाया था वह! पर ज़मींदार क्यों सुनने लगा कुछ? कल का किसान आज मज़दूर बनने को विवश हो गया। पड़ोस के धेनुका के साथ वह गाँव में अपनी स्त्री धनिया और बच्चे को छोड़, शहर में आ गया। यहाँ धेनुका ने अपने सेठ से कह-सुनकर उसे यह ठेलिया दिलवा दी। वह दिन-भर बाबू लोगों का सामान इधर-उधर ले जाता है। ठेलिया का किराया बारह आने रोज़ उसे देना पड़ता है। लाख मशक्क़त करने पर भी ठेलिया का किराया चुकाने के बाद डेढ़-दो रुपये से अधिक उसके पल्ले नहीं पड़ता। उसमें से बहुत किफ़ायत करने पर भी दस-बारह आने रोज़ वह खा जाता है। बाक़ी जमा करके हर महीने वह धनिया को भेज देता है। यह कोई ज़्यादा रक़म नहीं होती। पता नहीं, ग़रीब धनिया इस महँगी के ज़माने में कैसे अपना खर्च पूरा कर पाती है।।

और धनिया, उसके सुख-दुख की साथिन! उसकी याद आते ही रमुआ की आँखें भर आयीं। कलेजे में एक हूक-सी उठ आयी। उसकी चाल धीमी हो गयी। उसे याद हो आयी बिछुड़न की वह घड़ी, किस तरह धनिया उससे लिपटकर, बिलख-बिलखकर रोयी थी, किस तरह उसने बार-बार मोह और प्रेम से भरी ताकीद की थी कि अपनी देह का ख़याल रखना, खाने-पीने की किसी तरह की कमी न करना। और रमुआ की निगाह अपने-ही-आप अपने बाज़ुओं से होकर छाती से गुज़-

रती हुई रानों पर जाकर टिक गयी, जिनकी मांस-पेशियाँ घुल गयी थीं और चमड़ा ऐसे ढीला होकर लटक गया था, जैसे उसका मांस और हड्डियों से कोई सम्बन्ध ही न रह गया हो। ओह, शरीर की यह हालत जब धनिया देखेगी, तो उसका क्या हाल होगा! पर वह करे क्या? रूखा-सूखा खाकर, इतनी मशक़्क़त करनी पड़ती है। हुमक-हुमककर दिन-भर ठेलिया खींचने से मांस जैसे घुल जाता है और ख़ून जैसे सूख जाता है। और शाम को जो रूखा-सूखा मिलता है, उससे पेट भी नहीं भरता। फिर गयी ताक़त लौटे कैसे? जब धनिया उससे पूछेगी, सोने की देह माटी में कैसे मिल गयी, तो वह उसका क्या जवाब देगा? कैसे उसे समझायेगा? जब-जब उसकी चिट्ठी आती है, वह हमेशा ताकीद करती है कि अपनी देह का खयाल रखना। कैसे वह अपनी देह का खयाल रखे? इतनी कतर-ब्योंतकर चलने पर तो यह हाल है। आज क़रीब नौ महीने हुए उसे आये। धनिया के शरीर पर वह एक साड़ी और एक झूला छोड़कर आया था। वह बार-बार चिट्ठी में एक साड़ी भेजने की बात लिखवाती है। उसकी साड़ी तार-तार हो गयी होगी। झूला कब का फट गया होगा। पर वह करे क्या? कई बार कुछ रुपया जमा हो जाने पर एक साड़ी खरीदने की गरज़ से वह बाज़ार में भी जा चुका है। पर वहाँ मामूली जुलहटी साड़ियों की क़ीमत जब बारह-चौदह रुपये सुनता है, तो उसकी आँखें ललाट पर चढ़ जाती हैं। मन मारकर लौट आता है। वह क्या करे? कैसे साड़ी भेजे धनिया को? साड़ी खरीदकर भेजे, तो उसके खर्चे के लिए रुपये कैसे भेज सकेगा? पर ऐसे कब तक चलेगा? कब तक धनिया सी-टाँककर गुज़ारा करेगी? उसे लगता है कि यह एक ऐसी समस्या है, जिसका उसके पास कोई हल नहीं है। तो क्या धनिया....और उसका माथा भन्ना उठता है। लगता है कि वह पागल हो उठेगा। नहीं, नहीं, वह धनिया की लाज....

उसकी गली का मोड़ आ गया। इस गली में ईंटें बिछी हैं। उन पर ठेलिया और ज़ोर से खड़खड़ा उठी। उसकी खड़खड़ाहट उस समय रमुआ को ऐसी लगी, जैसे उसके थके, परेशान दिमाग़ पर कोई हथौड़े की चोट कर रहा हो। उसके शरीर की अवस्था इस समय ऐसी थी, जैसे उसकी सारी संजीवनी-शक्ति नष्ट हो गयी हो। और उसके पैर ऐसे पड़ रहे थे, जैसे वे अपनी शक्ति से नहीं उठ रहे हों, बल्कि ठेलिया ही उनको आगे को लुढ़काती चल रही हो।

उस दिन से रमुआ ने और अधिक मेहनत करना शुरू कर दिया। पहले भी वह कम मेहनत नहीं करता था, पर थक जाने पर कुछ आराम करना ज़रूरी समझता था। किन्तु अब थके रहने पर भी अगर कोई उसे सामान ढोने को बुलाता, तो वह ना-नुकर न करता। खुराक में भी जहाँ तक मुमकिन था, कमी कर दी। यह सब सिर्फ़ इसलिए कर रहा था कि धनिया के लिए वह एक साड़ी खरीद सके।

महीना ख़त्म हुआ, तो उसने देखा कि इतनी तरद्दुद और परेशानी के बाद भी वह अपनी पहले की आय में सिर्फ़ चार रुपये अधिक जोड़ सका है। यह देख उसे आश्चर्य के साथ घोर निराशा भी हुई। इस तरह वह पूरे तीन-चार महीने मेहनत करे, तब कहीं एक साड़ी का दाम जमा कर पायगा। पर इस महीने के जी-तोड़ परिश्रम का उसे जो अनुभव हुआ था, उससे यह बात तय थी कि वह ऐसी मेहनत अधिक दिनों तक लगातार करेगा, तो एक दिन ख़ून उगलकर मर जायगा। उसने तो सोचा था कि एक महीने की तो बात है, जितना मुमकिन होगा, वह मशक्कत करके कमा लेगा और साड़ी ख़रीदकर धनिया को भेज देगा। पर इसका जो नतीजा हुआ, उसे देखकर उसकी हालत वही हुई, जो रेगिस्तान के उस प्यासे मुसाफ़िर की होती है, जो पानी की तरह किसी चमकती हुई चीज़ को देखकर थके हुए पैरों को घसीटता हुआ, और आगे चलने की शक्ति न रहते भी, सिर्फ़ इस आशा से

प्राणों का ज़ोर लगाकर बढ़ता है कि बस, वहाँ तक पहुँचने में चाहे जो दुर्गति हो जाय, पर वहाँ पहुँच जाने पर जब उसे पानी मिल जायगा, तो सारी मेहनत-मशक़्क़त सुफल हो जायगी। किन्तु जब वहाँ किसी तरह पहुँच जाता है, तो देखता है कि अरे, वह चीज़ तो अभी उतनी ही दूर है। निदान, रसुआ की चिन्ता बहुत बढ़ गयी। वह अब क्या करे, उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। कई महीने से वह धनिया को बहलाता आ रहा था कि वह अब साड़ी भेजेगा, तब साड़ी भेजेगा, पर अब उसे लग रहा है कि वह धनिया को कभी भी साड़ी न भेज सकेगा। उसे अपनी दुरावस्था और बेबसी पर बड़ा दुख हुआ। साथ ही अपनी ज़िन्दगी उसे वैसे ही बेकार लगने लगी, जैसे घोर निराशा में पड़कर किसी आत्महत्या करनेवाले को लगती है। फिर भी जब धनिया को रुपये भेजने लगा, तो अपनी आत्मा तक को धोखा दे उसने फिर लिखवाया कि अगले महीने वह ज़रूर साड़ी भेजेगा। थोड़े दिनों तक वह और किसी तरह गुज़ारा कर ले।

*

उस सुबह रसुआ अपनी ठेलिया के पास खड़ा जँभाई ले रहा था कि सेठ के दरबान ने आकर कहा, "ठेलिया लेकर चलो। सेठजी बुला रहे हैं।"

बेगार की बात सोच रसुआ ने दरबान की ओर देखा। दरबान ने कहा, "इस तरह क्या देख रहे हो! सेठजी की भैंस मर गयी है। उसे गंगाजी में बहाने ले जाना है। चलो, जल्दी करो!"

वैसे निषिद्ध काम की बात सोच उसे कुछ क्षोभ हो आया। गाँव में मरे हुए जानवरों को चमार उठाकर ले जाते हैं। वह चमार नहीं है। वह यह काम नहीं करेगा। पर दूसरे ही क्षण उसके दिमाग़ में

यह बात भी आयी कि वह सेठ का तावेदार है। उसकी बात वह टाल देगा, तो वह अपनी ठेलिया उससे ले लेगा। फिर क्या रहेगा उसकी ज़िन्दगी का सहारा! मरता क्या न करता? वह ठेलिया को ले दरबान के पीछे चल पड़ा।

कोठी के पास पहुँचकर रमुआ ने देखा कि कोठी की बग़ल में टीन के छप्पर के नीचे मरी हुई भैंस पड़ी है और उसे घेरकर सेठ, उसके लड़के, मुनीम और नौकर-चाकर खड़े हैं, जैसे उनका कोई अज़ीज़ मर गया हो। ठेलिया खड़ी कर, वह खिन्न मन लिये खड़ा हो गया।

उसे आया देख, मुनीम ने सेठ की ओर मुड़कर कहा, "सेठजी, ठेलिया आ गयी। अब इसे जल-प्रवाह के लिए उठवाकर ठेलिया पर रखवा देना चाहिए।"

"हाँ, मुनीमजी, तो इसके कफ़न वग़ैरा का इन्तज़ाम करा दें। मेरे यहाँ इसने जीवन-भर सुख किया। अब मरने के बाद इसे नंगी ही क्या जल-प्रवाह के लिए भेजा जाय। मेरे विचार से बिछाने के लिए एक नयी दरी और ओढ़ने के लिए आठ गज़ मलमल काफ़ी होगी। जल्द दुकान से मँगा भेजें।"

देखते-ही-देखते उसकी ठेलिया पर नयी दरी बिछा दी गयी। उसे देखकर रमुआ की धँसी आँखों में जाने कितने दिनों की एक पामाल हसरत उभर आयी। सहज ही उसके मन में उठा, 'काश, वह उस पर सो सकता!' पर दूसरे ही क्षण इस अपवित्र ख़याल के भय से जैसे वह काँप उठा। उसने आँखें दूसरी ओर मोड़ लीं।

कई नौकरों ने मिलकर भैंस की लाश उठा दरी पर रख दी। फिर उसे मलमल से अच्छी तरह ढँक दिया गया। इतने में एक ख़ैरख्वाह नौकर सेठजी की बगिया से कुछ फूल तोड़ लाया। उनका एक हार बना भैंस के गले में डाल दिया गया और कुछ इधर-उधर उसके शरीर पर बिखेर दिये गये।

यह सब-कुछ हो जाने पर सेठ के बड़े लड़के ने रमुआ की ओर मुड़कर कहा, "देखो, इसे तेज़ धारा में ले जाकर छोड़ना और जब तक यह धारा में बह न जाय, तब तक न हटना, नहीं तो कोई इसके कफ़न पर हाथ साफ़ कर देगा।"

उसकी बात सुनकर नमकहलाल मुनीम ने रद्दा जमाया, "हाँ, बे रमुआ, बाबू की बात का खयाल रखना!"

रमुआ को लगा, जैसे वह बात उसे ही लक्ष्य करके कही गयी हो। कभी-कभी ऐसा होता है कि जो बात आदमी के मन में कभी स्वप्न में भी नहीं आती, वही किसी के कह देने पर ऐसे मन में उठ जाती है, जैसे सचमुच वह बात पहले ही से उसके मन में थी। रमुआ के खयाल में भी यह बात नहीं थी कि वह कफ़न पर हाथ लगायेगा, पर मुनीम की बात सुन सचमुच उसके मन में यह बात कौंध गयी कि क्या वह भी ऐसा कर सकता है?

वह इन्हीं विचारों में खोया हुआ ठेलिया उठा आगे बढ़ा। अभी थोड़ी ही दूर सड़क पर चल पाया था कि किसी ने पूछा, "क्यों भाई, यह किसकी भैंस थी?"

रमुआ ने आगे बढ़ते हुए कहा, "सेठ गुलजारी लाल की!"

उस आदमी ने कहा, "तभी तो! भाई, बड़ी भागवान थी यह भैंस। नहीं तो आजकल किसे नसीब होता है मलमल का कफ़न।"

रमुआ के मन में उसकी बात सुनकर उठा कि क्या सचमुच मलमल का कफन इतना अच्छा है? उसने अभी तक उसकी ओर निगाह नहीं उठायी थी, यही सोचकर कि कहीं उसे देखते देखकर सेठ का लड़का और मुनीम यह न सोचें कि वह ललचायी आँखों से कफ़न की ओर देख रहा है। उसकी नीयत ख़राब मालूम होती है। पर वह अब अपने को न रोक सका। चलते हुए ही उसने एक बार अगल-बग़ल देखा, फिर पीछे मुड़कर भैंस पर पड़े कफ़न को उड़ती हुई

नज़र से ऐसे देखा, जैसे वह कोई चोरी कर रहा हो।

काली भैंस पर पड़ी सफ़ेद मलमल, जैसे काली दूब के एक चप्पे पर उज्ज्वल चाँदनी फैली हुई हो। 'सचमुच यह जो बड़ा उम्दा कपड़ा मालूम देता है', उसने मन में ही कहा।

कई बार यह बात उसके मन में उठी, तो सहज ही उसे उन झिलंगी साड़ियों की याद आ गयी, जिन्हें वह बाज़ार में देख चुका था और जिनकी क़ीमत बारह-चौदह से कम न थी। उसने उन साड़ियों का मुक़ाबला मलमल के उस कपड़े से जब किया, तो उसे वह मलमल बेशक़ीमत जान पड़ी। उसने फिर मन में ही कहा, 'इस मलमल की साड़ी तो बहुत ही अच्छी होगी।' और उसे धनिया के लिए साड़ी की याद आ गयी। फिर जैसे इस कल्पना से ही वह काँप उठा। ओह, कैसी बात सोच रहा है वह? जीते-जी ही धनिया को कफ़न की साड़ी पहनायगा? नहीं-नहीं, वह ऐसा सोचेगा भी नहीं। ऐसा सोचना भी अपशकुन है। और इस ख़याल से छुटकारा पाने के लिए वह अब और ज़ोर से ठेलिया खींचने लगा।

अब आबादी पीछे छूट गयी थी। सूनी सड़क पर कहीं कोई नज़र नहीं आ रहा था। अब जाकर उसने शान्ति की साँस ली। जैसे अब उसे किसी की अपनी ओर घूरती आँखों का डर न रह गया हो। ठेलिया कमर से लगाये ही वह सुस्ताने लगा। तेज़ चलने में जो ख़याल पीछे छूट गये थे, जैसे वे फिर उसके खड़े होते ही उसके मस्तिष्क में पहुँच गये। उसने बहुत चाहा कि वे ख़याल न आयें। पर ख़यालों का यह स्वभाव होता है कि जितना ही आप उनसे छुटकारा पाने का प्रयत्न करेंगे, वे उतनी ही तीव्रता से आपके मस्तिष्क पर छाते जायँगे। रमुआ ने अन्य कितनी ही बातों में अपने को बहलाने की कोशिश की, पर फिर-फिर उन्हीं ख़यालों से उसका सामना हो जाता। रह-रहकर वही बातें पानी में तेल की तरह उसकी विचार-धारा पर तैर जातीं। लाचार

वह फिर चल पड़ा। धीरे-धीरे रफ़्तार तेज़ कर दी। पर अब ख़यालों की रफ़्तार जैसे उसकी रफ़्तार से भी तेज़ हो गयी थी। अब उनसे किसी भी प्रकार छुटकारा पाना सम्भव नहीं था। तेज़ रफ़्तार से लगातार चलते-चलते उसके शरीर से पसीने की धारें छूट रही थीं, छाती फूल रही थी, चेहरा सुर्ख़ हो गया था, आँखें उबल रही थीं और गर्दन और कनपटियों की रगें फूल-फूलकर उभर आयी थीं। पर उसे उन-सब का जैसे कुछ खयाल ही नहीं था। वह भागा जा रहा था कि वह जल्द-से-जल्द नदी पहुँच जाय और भैंस की लाश धारा में छोड़ दे। तभी उसे उस अपवित्र विचार से, उस धर्म-संकट से मुक्ति मिलेगी।

अब सड़क नदी के किनारे-किनारे चल रही थी। उसने सोचा, क्यों न कगार पर से ही लाश नदी की धारा में लुढ़का दे। पर दूसरे ही क्षण उसके अन्दर से कोई बोल उठा, अब जल्दी क्या है? नदी आ गयी। थोड़ी दूर और चलो। वहाँ कगार से उतरकर बीच धारा में छोड़ना। वह आगे बढ़ा। पर बीच धारा में छोड़ने की बात क्यों उसके मन में उठ रही है? क्यों नहीं वह उसे यहीं छोड़कर अपने को कफ़न के लोभ से, उस अपवित्र ख़याल से मुक्त कर लेता? शायद इसलिए कि सेठ के लड़के ने ऐसा ही करने को कहा था। पर सेठ का लड़का यहाँ खड़ा-खड़ा देख तो नहीं रहा है। फिर? तो क्या उसे अब उसी वस्तु से, जिससे जल्दी-से-जल्दी छुटकारा पाने के लिए वह भागता हुआ आया है, अब मोह हो गया है? नहीं, नहीं, वह तो....वह तो....

अब वह श्मशान से होकर गुज़र रहा था। अपनी झोपड़ी से झाँक-कर डोमिन ने देखा; तो वह उसकी ओर दौड़ पड़ी। पास आकर बोली, "भैया, यहीं छोड़ दे न!"

रमुआ का दिल धक-से कर गया, तो क्या यह बात डोमिन को मालूम है कि वह लाश को इसलिए लिये जा रहा है कि.......नहीं, नहीं! तो?

"भैया, यहाँ धारा तेज़ है, छोड़ दो न यहीं !" डोमिन ने फिर विनती की।

हाँ, हाँ, छोड़ दे न ! यह मौक़ा अच्छा है। डोमिन के सामने ही, उसे गवाह बनाकर छोड़ दे। और साबित कर दे कि तेरे दिल में वैसी कोई बात नहीं है। रमुआ के दिल ने ललकारा। पर वह योंही डोमिन से पूछ बैठा, "क्यों, यहीं क्यों छोड़ दूँ ?"

"तुम्हें तो कहीं-न-कहीं छोड़ना ही है। यहाँ छोड़ दोगे, तो तुम भी दूर ले जाने की मेहनत से छुटकारा पा जाओगे। और मुझे...." कहकर वह कफ़न की ओर ललचायी दृष्टि से देखने लगी।

"तुम्हें क्या ?" रमुआ ने पूछा।

"मुझे यह कफन मिल जायगा," उसने कफ़न की ओर अँगुली से इशारा करके कहा।

"कफन ?" रमुआ के मुँह से योंही निकल गया।

"हाँ-हाँ ! कहीं इधर-उधर छोड़ दोगे, तो बेकार में सड़-गल जायगा। मुझे मिल जायगा, तो मैं उसे पहनूँगी। देखते हो न मेरे कपड़े ?" कहकर उसने अपने लहँगे को हाथ से उठाकर उसे दिखा दिया।

"तुम पहनोगी कफन ?" रमुआ ने ऐसे कहा, जैसे उसे उसकी बात पर विश्वास ही न हो रहा हो।

"हाँ-हाँ, हम तो हमेशा कफन ही पहनते हैं। मालूम होता है, तुम शहर के रहनेवाले नहीं हो। क्या तुम्हारे यहाँ...."

"हाँ, हमारे यहाँ तो कोई छूता तक नहीं। कफन पहनने से तुम्हें कुछ होता नहीं ?" रमुआ की किसी शंका ने जैसे अपना समाधान चाहा, पर वह ऐसे स्वर में बोला, जैसे योंही जाना चाहता हो।

"गरीबों को कुछ नहीं होता, भैया ! आजकल तो जमाने में ऐसी आग लगी है कि लोग लाशें नंगी ही लुढ़का जाते हैं। नहीं तो पहले

इतने कफन मिलते थे कि हम बाजार में बेच आते थे ।"

"बाजार में बेच आते थे?" रमुआ ने ऐसे पूछा, जैसे उसके आश्चर्य का ठिकाना न हो, "कौन खरीदता था उन्हें ?"

"हमसे कबाड़ी खरीदते थे और उनसे गरीब और मजदूर," उसने कहा ।

"गरीब और मजदूर ?" रमुआ ने कहा ।

"हाँ-हाँ, बहुत सस्ता बिकता था न । शहर के गरीब और मजदूर जियादातर वही कपड़े पहनते थे ।"

रमुआ उसकी बात सुन जैसे किसी सोच में पड़ गया ।

उसे चुप देख डोमिन फिर बोली, "तो भैया, छोड़ दो न यहीं । आज न जाने कितने दिन बाद ऐसा कफन दिखायी पड़ा है । किसी बहुत बड़े आदमी की मैंस मालूम पड़ती है । तभी तो ऐसा कफन मिला है इसे । छोड़ दो, भैया, मुझ गरीब के तन पर पड़ जायगा । तुम्हें दुआएँ दूँगी !" कहते-कहते वह गिड़गिड़ने लगी ।

रमुआ के मन का संघर्ष और तीव्र हो उठा । उसने एक नज़र डोमिन पर उठायी, तो सहसा उसे लगा, जैसे उसकी धनिया चिथड़ों में लिपटी डोमिन की बग़ल में आ खड़ी हुई है, और कह रही है, "नहीं-नहीं, इसे न देना ! मैं भी तो नंगी हो रही हूँ ! मुझे ! मुझे...." और उसने ठेलिया आगे बढ़ा दी ।

"क्यों, भैया, तो नहीं छोड़ोगे यहाँ ?" डोमिन निराश हो बोली ।

रमुआ सकपका गया । क्या जवाब दे वह उसे ? मन का चोर जैसे उसे पानी-पानी कर रहा था । फिर भी ज़ोर लगाकर मन की बात दबा उसने कहा, "सेठ का हुकुम है कि इसका कफन कोई छूने न पाये ।" और ठेलिया को इतने ज़ोर से आगे बढ़ाया, जैसे वह इस ख़याल से डर गया हो कि कहीं डोमिन कह न उठे, हूँ-हूँ ! यह क्यों नहीं कहते कि तुम्हारी नीयत खुद खराब है !

काफ़ी दूर बढ़कर, यह सोचकर कि कहीं डोमिन कफ़न के लोभ से उसका पीछा तो नहीं कर रही है, उसने मुड़कर चोर की तरह पीछे की ओर देखा। डोमिन एक लड़के को उसी की ओर हाथ उठाकर कुछ कहती-सी लगी। फिर उसने देखा कि वह लड़का उसी की ओर आ रहा है। वह घबरा उठा, तो क्या वह लड़का उसका पीछा करेगा?

अब वह धीरे-धीरे, रह-रहकर पीछे मुड़-मुड़कर लड़के की गति-विध को ताड़ता चलने लगा। थोड़ी दूर जाने के बाद उसने देखा, तो लड़का दिखायी नहीं दिया। फिर जो उसकी दृष्टि झाऊँ के झुरमुटों पर पड़ी, तो शक हुआ कि वह छिपकर तो उसका पीछा नहीं कर रहा है। पर कई बार आगे बढ़ते-बढ़ते देखने पर भी जब उसे लड़के का कोई चिन्ह दिखायी न दिया, तो वह उस ओर से निश्चिन्त हो गया। फिर भी चौकन्नी नज़रों से इधर-उधर देखता ही बढ़ रहा था।

काफ़ी दूर एक निर्जन स्थान पर उसने नदी के पास ठेलिया रोकी। फिर चारों ओर शंका की दृष्टि से एक बार देखकर उसने कमर से ठेलिया छुड़ा ज़मीन पर रख दी।

अब उसके दिल में कोई दुविधा न थी। फिर भी जब उसने कफ़न की ओर हाथ बढ़ाया, तो उसकी आत्मा की नींव तक हिल उठी। उसके काँपते हाथों को जैसे किसी शक्ति ने पीछे खींच लिया। दिल धड़-धड़ करने लगा। आँखें वीभत्सता की सीमा तक फैल गयीं। उसे लगा, जैसे सामने हवा में हज़ारों फैली हुई आँखें उसकी ओर घूर रही हैं। वह किसी दहशत में काँपता बैठ गया। नहीं, नहीं, उससे यह न होगा। फिर जैसे किसी आवेश में उठ, उसने ठेलिया को उठाया कि लाश को नदी में उलट दे कि सहसा उसे लगा कि जैसे फिर धनिया उसके सामने आ खड़ी हुई है, जिसकी साड़ी जगह-जगह बुरी तरह फट जाने से उसके अंगों के हिस्से दिखायी दे रहे हैं। वह उन अंगों को सिमट-सिकुड़कर छिपाती जैसे बोल उठी, देखो, अब

की अगर साड़ी न भेजी, तो मेरी दशा........

"नहीं, नहीं !" रमुआ हथेलियों से आँखों को ढँकता हुआ बोल उठा और ठेलिया ज़मीन पर छोड़ दी। फिर एक बार उसने चारों ओर शीघ्रता से देखा और जैसे एक क्षण को उसके दिल की धड़कन बन्द हो गयी, उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया, उसका ज्ञान जैसे लुप्त हो गया और उसी हालत में, उसी क्षण उसके हाथों ने बिजली की तेज़ी से कफ़न खींचा, समेटकर एक ओर रखा और ठेलिया उठाकर लाश को नदी में उलटा दिया। तब जाकर जैसे होश हुआ। उसने जल्दी से कफ़न ठेलिया पर रख उसे माथे के मैले गमछे से अच्छी तरह ढँक दिया और ठेलिया उठा तेज़ी से दूसरी राह से चल दिया।

कुछ दूर तक इधर-इधर देखे बिना वह सीधे तेज़ी से चलता रहा। जैसे वह डर रहा था कि इधर-उधर देखने पर कहीं कोई दिखायी न पड़ जाय। पर कुछ दूर और आगे बढ़ जाने पर वह वैसे ही निडर हो गया, जैसे चोर सेंध से दूर भाग जाने पर। अब उसकी चाल में धीरे-धीरे ऐसी लापरवाही आ गयी, जैसे कोई विशेष बात ही न हुई हो, जैसे वह रोज़ की तरह आज भी किसी बाबू का सामान पहुँचाकर खाली ठेलिया को धीरे-धीरे खींचता, अपने में रमा हुआ, डेरे पर वापस जा रहा हो। अपनी चाल में वह वही स्वाभाविकता लाने की भरसक चेष्टा कर रहा था, पर उसे लगता था कि कहीं से वह बेहद अस्वाभाविक हो उठा है और कदाचित उसकी चाल की लापरवाही का यही कारण था कि वह रात होने के पहले शहर में दाखिल नहीं होना चाहता था।

काफ़ी दूर निकल जाने पर न जाने उसके जी में क्या आया कि उसने पलटकर उस स्थान की ओर एक बार फिर देखा, जहाँ उसने भैंस की लाश गिरायी थी। कोई लड़का कोई काली चीज़ पानी में से

खींच रहा था। वह फिर बेतहाशा ठेलिया को सड़क पर खड़खड़ाता भाग खड़ा हुआ।

उस दिन गाँव में हल्दी में रंगी मलमल की साड़ी पहने धनिया अपने बच्चे को एक हाथ की अँगुली पकड़ाये और दूसरे हाथ में छाक-भरा लोटा कन्धे तक उठाये, जब काली माई की पूजा करने चली, तो उसके पैर असीम प्रसन्नता के कारण सीधे नहीं पड़ रहे थे। उसकी आँखों से जैसे उल्लास छलका पड़ता था।

रास्ते में न जाने कितनी औरतों और मर्दों ने उसे टोककर पूछा, "क्यों, धनिया, यह साड़ी रमुआ ने भेजी है?"

और उसने हर बार शरमायी आँखों को नीचे कर, होंठों पर उमड़ती हुई मुस्कान को बरबस दबाकर, सिर हिला जताया, हाँ!

◆

कुत्ते की टांग

सुबह-ही-सुबह मालिक का बुलावा पा मेरी चाय कड़वी हो गयी।

कोठी पर पहुँच, चौकीदार से अपने आने की खबर साहब के पास भेजकर वहीं बरामदे में पड़ी बेंच पर बैठ गया। बरामदे के दूसरी तरफ़ मालिक के आठ-दस साल के लड़के को एक मास्टर पढ़ा रहे थे। लड़के ने मेरी ओर देखते हुए अपनी जेब से एक टाफ़ी निकाल मुँह में डाली, फिर आँखों को शरारत से नचाता एक टाफ़ी मास्टर की ओर बढ़ाते हुए उसने कहा, "एक टाफ़ी आप भी खाइए।"

निरीह मास्टर ने एक नज़र मेरी ओर देखकर लड़के से कहा, "नहीं, आप ही खाइए। लिखिए तो ज़रा यह सवाल।" कहकर उन्होंने किताब खोली।

लड़का शरारत से मचलकर बोला, "ऊँ-हूँ! जब तक आप यह टाफ़ी नहीं खायेंगे, मैं कलम को हाथ न लगाऊँगा!"

बेचारे मास्टर ने एक बार फिर मेरी ओर उसी नज़र से देखा। फिर लड़के की ओर हाथ फैलाकर कहा, "अच्छा, दे देजिए।"

लड़के ने आँखों में बदमाशी की चमक लाकर कहा, "मुँह

खोलिए, मैं आपके मुँह में यहीं से फेंकूँगा।" और निशाना ठीक किया।

मास्टर ने फिर एक बार उसी तरह मेरी ओर देखा। अब बेंच जैसे मेरे चूतड़ों में गड़ने लगी। मैं खड़ा हो अन्दर की ओर देखने लगा। फिर उधर जो नज़र घुमायी, तो देखा, मास्टर मुँह खोले हुए, सहमी-सहमी आँखों से पलक झपकाते लड़के की ओर देख रहे थे और लड़का आँखों में कुछ छिपाये निशाना साध रहा था। सहसा लड़का उठ खड़ा हुआ और पलक झपकते ही उसने खींचकर टाफ़ी इतने ज़ोर से मास्टर के मुँह पर मारी कि मास्टर मुँह पर हाथ रख, पीछे की ओर कुर्सी पर लुढ़कते हुए-से चीख़ पड़े।

लड़का एक बार ज़ोर से हँसा। फिर सहसा हाथों को अपनी आँखों पर रख ज़ोर-ज़ोर से रो पड़ा।

"क्या हुआ? क्या हुआ? ओफ़! ओफ़! क्या आफ़त है?" कमर से खुलकर फिसलती धोती को दोनों हाथों में सँभालता, बड़बड़ाता हुआ मालिक बाहर आ गया। आँखों को दोनों हाथों से मीसते लड़के ने रोने की आवाज़ और भी तेज करके कहा, "इन्होंने मुझे मार दिया!" और वह ज़ोर-ज़ोर से साँसें चढ़ाकर सिसकने लगा।

मालिक की आँखें लाल हुईं कि मास्टर ने हकलाते हुए कहा, "आ-आ-आप उनसे पूछ लीजिए। उन्होंने तो सब देखा है।"

मालिक मेरी ओर घूमा और चेहरे पर जाने क्या देखकर मेरे कुछ कहने के पहले ही मास्टर की ओर देखकर बोला, "ओह, आज मेरी तबीयत बहुत ख़राब है! आप जाइए, मास्टर साहब। कल अपना हिसाब ले जाइएगा। इस लड़के को आप नहीं पढ़ा सकते।" फिर मेरी ओर मुड़कर कहा, "आप अन्दर आइए।"

लड़का चौकड़ी भरता किसी ओर ग़ायब हो गया और मास्टर एक मरियल टट्टू की तरह पैर घसीटते सीढ़ियाँ उतरने लगे।

बैठक के दरवाज़े पर आ मालिक ने कहा, "एक मिनट, अभी आया।"

यह बैठक मेरे लिए नहीं है। मेरे मालिक के पास दो बैठकें हैं। एक ख़ास और एक आम। ख़ास ख़ास-ख़ास लोगों के लिए और आम आम लोगों के लिए। मुझसे अक्सर वह आम ही में मिलता है। मुश्किल से दो-चार बार मुझसे वह ख़ास में मिला है। और जब-जब ऐसा किया है, मेरा माथा ठनका है। मुझे यह समझते देर नहीं लगी है कि वह किस विषय पर और किस पैराये में बातें करनेवाला है। और यह ख़याल मुझे ज़रूरत से भी ज़्यादा सचेत कर गया है।

आज की बैठक भी ख़ास थी। मेरा माथा ठनका और मुझे यह समझते देर न लगी कि आज वह जुम्मन के बारे में कैसी बातें करने-वाला है।

जुम्मन उसके प्रेस का एक मशीनमैन है। चार दिन पहले, एक शाम को चार बजे, जब मैं मशीन पर चिप्पी लगाकर छपने को फ़र्मा तैयार कर रहा था, अचानक बाहर के दालान से एक चीख़ सुनायी दी और ज़ोर से एक खटाक की आवाज़ कर दालान की मशीन बन्द हो गयी। घबराया हुआ मैं दालान की मशीन के पास पहुँचा, तो देखा कि जुम्मन की दाहिनी बाँह कुहनी तक बेलनों के नीचे जा पड़ी थी। मैं बिजली के बटन की ओर बढ़ा कि रामऔतार बोल पड़ा, "मैंने बन्द कर दिया है, जगरनाथ भाई, तुम जुम्मन भाई को देखो!"

एक छन में वहाँ भीड़ लग गयी। जुम्मन का शरीर ऐंठा जा रहा था, उसके पीड़ा से तमतमाये चेहरे से ठण्डे पसीने की धारें बह रही थीं। मैं बेलन को निकालने के लिए ढिबरी खोलने लगा, पर वह खुल नहीं रही थी। टान पाकर पेंच की चूड़ियाँ टूट गयी थीं। मैंने बहुतेरी कोशिश की, लेकिन ढिबरी टस-से-मस न हुई। जुम्मन एक बार और पीड़ा से तड़पता चीख़ा और मेरी ओर ज़िबह होते कबूतर की आँखों से

देखता बोला, "जगरनाथ भाई, जल्दी करो !....ओ अम्माँ !........"

उसकी उस आवाज़ ने मजदूरों में एक तड़प पैदा कर दी। सब ने चिल्लाकर बेलन की धुरी को पकड़ते कहा, "इसे हम टानकर उठा देंगे !"

"नहीं, वैसे नहीं उठेगा। जल्दी राड लाओ, यहाँ लगाकर चाड़ेंगे।" मैंने कहा।

जुम्मन एक बार फिर घायल पंछी की तरह तड़पा और बेदम होता बोला, "जगरनाथ भाई, जल्दी करो ! ओह !" और पीड़ा से उसका सारा शरीर जैसे ऐंठा और अब असह्य हो उठने के कारण उसने आँखें मूँद लीं।

राड लगाकर हमने चाँड़ना शुरू किया कि सीढ़ियों पर खट-खट करता, 'मशीनें क्यों बन्द हो गयीं ?' चिल्लाता मालिक उतरा और और भी ज़ोर से चिल्लाकर बोला, "यह क्या कर रहे हो ? सैकड़ों रुपये बर-बाद हो जायँगे ! बुशवाला पार्ट टूट जायगा ! मशीन हफ़्तों के लिए बन्द हो जायगी ! ढिबरी खोलकर बेलन को अलग करो !........"

मज़दूरों ने हाथ रोककर परेशान आँखों से मेरी ओर देखा। जुम्मन का शरीर काँपा और वह धीमी, तड़पती हुई आवाज़ में बोला, "अँधेरा छा रहा है, जगरनाथ भाई, जल्दी करो....ओह !........"

पागल की तरह चीखकर मैंने मजदूरों को ललकारा, "चाँड़ो ! पूरी ताकत लगाओ !........"

मालिक पैर पटककर बड़बड़ाया, "मैनेजर ! मैनेजर कहाँ गया ?.... चौकीदार ! चौकीदार ! मैनेजर को बुलाओ, ये-सब मशीन तोड़ने पर तुले हैं !........" और आँखें लाल कर हमारी ओर घूरने लगा।

चाँड़ पाकर बुशवाला पार्ट चर्राया और दूसरे मिनट अकड़-कर अलग हो गया। जुम्मन पीछे की ओर लुढ़का कि हमने उसे हाथों पर सँभाल लिया और उठाकर पास ही काग़ज़ों के ढेर पर लेटा

दिया। वह बेहोश हो गया।

"अस्पताल भेजने के लिए जल्दी इन्तज़ाम कीजिए," मैंने मालिक की ओर मुड़कर कहा, तो मालिक की तीखी आवाज़ सुनायी दी, "आप कहाँ थे, मैनेजर साहब ? इन-सब ने मशीन का सत्यानास कर दिया! सैकड़ों रुपये का नुक़सान हो गया!"

मैनेजर ने एक बार मशीन की ओर गम्भीर होकर देखा। फिर बिफरे हुए मज़दूरों की ओर देखकर मालिक से कहा, "आप जाइए इस वक़्त। मैं........"

मालिक बाहर हुआ। कार के स्टार्ट होने की आवाज़ सुनायी दी, तो मैं मैंने कहा, "कार रुकवाइए! जुम्मन को अस्पताल भेजना है!"

"मैं देखता हूँ। ज़रूरत होगी तो गाड़ी आ जायगी।" कहता मैनेजर जुम्मन की ओर बढ़ा।

जुम्मन बेहोश पड़ा था। उसकी पिसी हुई बाँह से कई मज़दूर उलझे हुए थे। मैनेजर ने उस बाँह को देखकर कहा, "हड्डी नहीं टूटी है। घबराने की कोई बात नहीं। मैं फ़ोन करके अभी अपने डाक्टर को बुलाता हूँ। तुम लोग हटो, इसे हवा की ज़रूरत है।"

"नहीं, इसे हम अस्पताल ले जायँगे!" प्राइवेट डाक्टर का मतलब समझकर मैंने कहा, "न हो, अस्पताल को फ़ोन करके गाड़ी मँगा लीजिए।"

"अस्पताल में कौन किसको पूछता है ? हमारा डाक्टर बोस बहुत मशहूर डाक्टर है। घबराने की कोई बात नहीं है। अच्छा हो कि तुम लोग इसे मेरे यहाँ पहुँचा दो। वहाँ आराम रहेगा। और तुम लोगों में से एक-दो आदमी चाहो, तो रह जाओ, वर्ना मैं पूरा-पूरा खयाल रखूँगा। उठाओ तो इसे।" कहकर, भोला बनकर उसने मेरी ओर देखा।

चारों ओर से बन्द प्रेस में हमारा ही दम घुट रहा था, तो जुम्मन

की क्या हालत होगी, यही सोचकर हमने उसे उठाया।

मैनेजर प्रेस का मैनेजर ही नहीं, मालिक का रिश्तेदार और साझी-दार भी है। उसकी कोठी घर के पास ही है। उसकी कोठी के बरा-मदे में पड़ी बेंच पर हमने, उसके कहने के मुताबिक, जुम्मन को लिटा दिया। मैनेजर ने कुछ होमियोपैथी की गोलियाँ लाकर जुम्मन के मुँह में डालीं। फिर बोला, "डाक्टर को फ़ोन कर दिया है। आता ही होगा। एक-दो आदमी रह जाओ, भीड़ लगाने से फ़ायदा? आज अब प्रेस बन्द रहेगा।"

लेकिन मज़दूर न टले। उनके प्राण जुम्मन में अटके थे। थोड़ी देर में जुम्मन को होश आया, तो उसने पथरायी आँखों से एक बार अपनी उस बाँह की ओर देखा फिर मेरी ओर देखकर सूखे होंठों पर जीभ फेरकर कहा, "जगरनाथ भाई, बाँह फट रही है। जरा पानी...."

ठंडा पानी उस हालत में देना ठीक न समझकर मैनेजर से मैंने चाय के लिए कहा। तभी डाक्टर आ गया। उसने देख-सुनकर इंजेक्शन दिया। फिर पट्टी बाँध चुका, तो मैंने पूछा, "हड्डी पर ज़रब नहीं आया है न, डाक्टर साहब?"

"अभी कुछ नहीं कहेगा। बाँह नहीं देखता, बाबा?"

मैनेजर ने उसकी बात समझायी, "सूजन जब कम होगी, तभी तो हड्डी का पता चलेगा।"

एक मज़दूर ने कहा, "एक्सरे...."

मैनेजर ने बात बनायी, "मैंने देखा था, हड्डी में चोट नहीं आयी है। कुछ होगा भी, तो दो-चार रोज़ में मालूम हो जायगा। इस वक़्त इसे इसके घर पहुँचा दो। एक रिक्शा ले लो, यह किराया है।" कहकर उसने एक रुपया बढ़ा दिया।

"हाँ, जगरनाथ भाई, जल्दी घर ले चलो। मेरा दिल...." जुम्मन ने एक बेचैनी में तड़पकर कहा।

उस रात मैं जुम्मन को छोड़ न सका। उसकी बात-बात पर रोती अकेली बीवी पर उसे कैसे छोड़ा जा सकता था?

तीन-चार घंटे तो जुम्मन शान्त पड़ा रहा, फिर छटपटाकर चीखने लगा, "ओह! ओह! बाँह गयी, जगरनाथ भाई! ओह! ओह!...."

आधी रात का वक्त था। दौड़ा-दौड़ा मैनेजर के यहाँ गया। बार-बार चिल्लाने पर वह बाहर आया, तो मैंने सब बताया। इस पर उसने जँभाई लेकर कहा, "सुबह देखा जायगा, इस वक्त अब क्या हो सकता है?"

मैंने कहा, "आप एक चिट्ठी लिख दीजिए, मैं इसी वक्त उसे अस्पताल ले जाऊँगा।"

"अब इस वक्त कलम-काग़ज़ कहाँ ढूँढ़ा जाय? सुबह होने पर देखा जायगा।" और वह अन्दर घुस गया।

दौड़ा-दौड़ा मैं मालिक की कोठी पर पहुँचा। लेकिन वह बाहर न आया। उसने नौकर से कहला भेजा कि उसकी तबीयत बहुत ख़राब है।

आखिर एक रिक्शे पर उसे अस्पताल ले गया। जुम्मन वहाँ बरामदे में पड़ा चीखता-चिल्लाता रहा और मैं जो भी मिला, उससे कहता-सुनता रहा, लेकिन किसी ने परवा न की। दूसरे दिन सुबह कहीं आठ बजे जाकर वह दाखिल हो सका।

तीन घण्टे देर से जब प्रेस पहुँचा, तो वहाँ की हवा बिगड़ी थी। मज़दूरों से मालूम हुआ कि मालिक और मैनेजर कई बार मेरी खोज में चक्कर लगा चुके थे। तभी मैनेजर के चपरासी ने आकर मुझसे कहा, "मैनेजर साहब बुला रहे हैं।"

सुनकर मज़दूरों ने कहा, "हम भी चलेंगे!"

लेकिन मैंने उन्हें रोक दिया कि अभी इसकी ज़रूरत नहीं और अकेले ही उससे मिलने चला।

वहाँ मालिक भी बैठा था। मुझे एक कुर्सी पर बैठने का इशारा कर मैनेजर ने कहा, "आपने आखिर वही किया। इन अस्पतालों में ग़रीबों की पूछ नहीं होती। इसी लिए मैंने अपने खास डाक्टर को बुलाया था। लेकिन आपने........"

"जो-कुछ भी हो, ग़रीबों के लिए ये अस्पताल ही तो सहारा हैं," मैंने कहा।

मलिक ने बहुत-सी मीठी-मीठी बातें करके कहा, "ख़ैर, ये दस रुपये जुम्मन के दूध के लिए हैं। और कोई ज़रूरत हो, तो आप कहें........"

"माफ़ कीजिए इस वक्त। शाम को कमेटी की बैठक हो लेगी, तभी कुछ तय होगा।" कहता मैं उठ खड़ा हुआ।

"इसमें कमेटी की बैठक की क्या ज़रूरत है? आप जो कहेंगे...."

"लेकिन मैं तो कमेटी की राय लिये बिना कुछ नहीं कर सकता," कहकर मैं बाहर निकल आया।

दो दिन के बाद एक्सरे लेने पर मालूम हुआ कि बाँह की हड्डी कई जगह चटख गयी है। कमेटी की बैठक में तय हुआ कि लेबर आफ़िस में जुम्मन के बारे में दरख़ास्त दी जाय और मुकम्मल दवा-दारू और मुआवज़े की माँग की जाय।

यही वह खास बात थी, जिसके कारण मालिक ने आज मुझे अपनी खास बैठक में बैठाकर मेरा सम्मान किया था!

थोड़ी ही देर में आगे-आगे चाय की ट्रे लिये नौकर के साथ मालिक बैठक में आया। उसने मेरी ओर संकेत करके नौकर से कहा, "आपके सामने रखो।"

मैंने कहा, "मैं चाय पीकर आया हूँ। आप काम की ही बातें करें, तो अच्छा।"

"हाँ-हाँ, आप चाय पीजिए। ये समोसे बिलकुल ताज़े हैं। आप

ही के लिए खास तौर पर अभी-अभी बनवाये हैं। और कोई खास बात तो है नहीं।" मालिक ने लापरवाह-सा कोच की पीठ पर उठँगते कहा, "सुना है कि आप लोग जुम्मन के बारे में दरखास्त देने जा रहे हैं?"

"हाँ, कमेटी ने यही तय किया है," मैंने कहा।

"देखिए, सिक्रेटरी साहब, मैं तो जानता हूँ कि कमेटी-वमेटी जो भी है, सब आप हैं, और........और आप कुछ पढ़े-लिखे, समझदार आदमी हैं। आप तो जानते होंगे कि इस दरखास्त-वरखास्त से क्या होता है, सर्टीफिकेट, मुक़द्दमा, गर-गवाही, तारीख़-पर-तारीख़, महीनों की खट-खट........फिर कौन जाने कि फ़ैसला क्या होगा। आप लोग मज़दूर आदमी ठहरे, कहाँ इतना वक्त और पैसा मिलेगा और....और मैं तो कोई ग़ैर आदमी नहीं, आखिर आप लोग मेरे आदमी हैं, आप लोगों के लिए कुछ न करूँगा, तो किसके लिए करूँगा? आपको दरखास्त देने से पहले मुझसे तो पूछ लेना चाहिए था। मैं आपके कहने के बाहर थोड़े ही हूँ।" कहकर उसने निहायत मुलायमियत से मेरी ओर देखा।

"आपकी यह बात मैं कमेटी के सामने रख दूँगा। फिर जो तय........"

"अरे सिक्रेटरी साहब! आप तो कमेटी को खामखाह के लिए घसीट लेते हैं। क्या यह मैं नहीं जानता कि सब-कुछ करने-धरनेवाले आप हैं? आप जो चाहेंगे वही होगा। मेरा मतलब है कि काम आप ऐसा कीजिए कि आपको भी कुछ फ़ायदा हो और....और....मेरा मतलब समझते हैं न?" कहकर उसने अजीब तरह मुस्कराकर मेरी ओर देखा।

"जी, अपने ही फ़ायदे के लिए तो मैं यह-सब कर रहा हूँ। आज जुम्मन भाई पर पड़ी है, कल मुझपर पड़ेगी, परसों किसी और पर। मशीनों का मामला ठहरा, संयोग कौन जाने? आपने पिछली दफ़े

करीम के लिए क्या किया ? बेचारे लड़के की तीन अँगुलियाँ जड़ से कट गयीं और आप........"

"सच्च कहूँ, सिक्रेटरी साहब, तो इन मुसलमानों से मुझे कोई हमदर्दी नहीं। ये हम हिन्दुओं के दुश्मन हैं। किसी हिन्दू पर ऐसी पड़ी होती, तो आप देखते कि मैं क्या-क्या करता ? अरे साहब, आप कभी वक्त पड़े पर मुझसे कुछ कहेंगे, तब आपको मालूम होगा कि किसी भी हिन्दू के लिए मैं कैसे जान तक दे सकता हूँ ! आप खामखाह इन मुसलमानों के चक्कर में पड़े रहते हैं।" उसने धीमे से कहा।

"जी हाँ, मैं यह बात भी कमेटी के सामने रखूँगा, और...."

"ओफ़्फ़ोह ! आप तो कमेटी के लिए जान दिये दे रहे हैं ! अरे सिक्रेटरी साहब ! आप अपनी और अपने हिन्दू भाइयों की बात क्यों नहीं समझते ? आप अपने लिए मुझसे कुछ क्यों नहीं कहते ?" मीठी चिढ़ के साथ उसने कहा।

"यह अपने ही लिए तो कर रहा हूँ। मैं यह जानता हूँ कि जुम्मन भाई के साथ न्याय होगा, तो मेरे साथ भी होगा। और...."

"ओह ! जुम्मन ! जुम्मन ! जुम्मन ! जुम्मन के साथ क्या अन्याय हो रहा है ? इस कमबख़्त के कारण मेरी हज़ारों की मशीन आज पाँच दिनों से बेकार पड़ी है। सैकड़ों का मेरा नुक़सान रोज़ हो रहा है। इस ओर भी आपका कुछ ध्यान है ? अगर आप बीच में न पड़े होते, तो मैं देखता कि कोई कैसे मशीन को तोड़ देता है। और, सिक्रेटरी साहब, हम आपकी बहुत इज़्ज़त करते हैं, वर्ना........"

"वर्ना जुम्मन भाई की आपने जान ले ली होती, क्यों ?" अधिक सहना अब मेरे लिए मुश्किल हो रहा था।

"मशीन का मामला है, जान जाना कोई मुश्किल बात है ? अक्सर ऐसा हुआ भी करता है। मगर मेरा मतलब........"

"वही आप साफ़-साफ़ कहिए न ! मगर इतना समझ लीजिए कि

कमेटी से राय लिये बिना मैं कुछ नहीं कर सकता! आप चाहें तो कमेटी के सामने आकर अपनी बातें कह सकते हैं।"

"वह तो आप जैसा कहें, मैं सब करने के लिए तैयार हूँ, लेकिन मुझे यह भी तो मालूम हो कि मेरा अपना कोई वहाँ है। इसी लिए तो आपको बुलाया था। लेकिन, सिक्रेटरी साहब, मुश्किल तो यह है कि आप मेरी बात नहीं समझते। मेरा क्या, जैसे और सब होता है, हज़ार-पाँच सौ और सही। लेकिन आप क्यों यह सुनहला मौका खो रहे हैं?"

"मौक़ा हम खो नहीं रहे हैं। हम जानते हैं कि इस मौक़े पर हमने ठीक-ठीक अमल किया, तो कितने मौक़े आगे मिलेंगे! अच्छा, अब मुझे आज्ञा दीजिए," कहता हुआ मैं उठ खड़ा हुआ।

"बात तो अभी कुछ तय हुई नहीं, ज़रा देर और बैठ जाइए। मैं चाहता हूँ कि........"

तभी बरामदे से कीं-कीं की आवाज़ आयी। मालिक आवाज़ सुन-कर व्यस्त हो अपनी जगह से उछल पड़ा और दरवाज़े के पास जाकर बोला, "कौन? मोहना आ गया तू? ला तो पप्पी को इधर। डाक्टर ने क्या कहा?"

मोहन की आवाज़ आयी, "सूई का पुर्जा लिखकर दिया है। बीस सूई लगेगी। डाक्टर साहब शाम को आप से मिलने भी आयेंगे।"

"अच्छा, तू अभी मुनीम से दाम लेकर दवा खरीद ला।........ और हाँ, उधर से ही गाड़ी में तेल भराते आना। आज कई जगह जाना है।" कहकर वह फिर अपनी जगह पर आ बैठा।

उसकी गोद में पड़ा पप्पी कीं-कीं कर रहा था। पप्पी की आगे की एक टाँग बेजान-सी होकर लटकी हुई थी। उस पर पट्टियाँ बँधी हुई थीं। उसके माथे पर स्नेह से हाथ फेरता मालिक बोला, "इसे मैंने एक

अंग्रेज से खरीदा था। देख रहे हैं न, कितना प्यारा कुत्ता है !" कहकर उसने कुत्ते का मुँह चूमा।

"इसकी टाँग में क्या हो गया?" मैंने योंही पूछा।

सहसा मालिक की आँखें गुस्से से लाल हो गयीं। उसने कुत्ते की वह टाँग हाथ में लेकर कहा, "कम्बख़्त, अन्धे ड्राइवर ने जान-बूझकर कल शाम को इसका पैर कुचल दिया ! मेरा बस चलता, तो मैं उसी वक़्त उसे गोली से उड़ा देता ! बदमाश !" और कोई बात मुँह में ही चबाता वह कुत्ते को विह्वल-सा हो प्यार करने लगा।

"अच्छा, अब मैं जाऊँगा," कहकर मैं उठ खड़ा हुआ।

"आप मेरी बातों पर फिर से एक बार विचार कीजिएगा। अर्जी लेबर आफ़िस में भेजने से पहले एक बार फिर मुझसे मिलिएगा। मैं आपके लिए कुछ करना चाहता हूँ। मैं जानता हूँ कि आजकल के मंहगी के ज़माने में........"

उसकी बात अधूरी ही छोड़कर मैं बाहर आ गया। मेरी आँखों के सामने उस वक़्त वह कुत्ते की टाँग थी और उसी की बग़ल में जुम्मन की वह बाँह थी और मैं सोच रहा था........कि तभी किसी की आवाज़ सुनायी पड़ी, "बन्दगी, जगरनाथ भाई।"

मैंने देखा, वह मालिक का ड्राइवर हीरा था। उदास था। कहा, "कहो भाई, सुना, कल तुमने मालिक के कुत्ते की टाँग........ख़ैरियत तो है?........"

"ख़ैरियत क्या बतायें, भाई? कल शाम को दफ़्तर से गाड़ी लेकर चला, तो जुम्मन की बात दिमाग को परेशान किये हुए थी। रह-रहकर उसकी छुरी के नीचे पड़े बकरे की तरह चीख़ कानों में गूँज रही थी। उस दिन इस मरदूद ने मुझे अन्दर न जाने दिया। इसे घर जाने की जल्दी थी।....वही सब सोच रहा था कि बदबख़्ती का मारा उसका कुत्ता....ख़ैर, नौकरी छूट गयी, हिसाब के लिए आज

बुलाया है।........जुम्मन भाई का क्या हाल है? सुना है कि हड्डी........"

"हाँ, शायद बेकार हो जाय," मेरे दिमाग़ में मालिक का हिन्दू-मुसलमान गूँजा और मेरी साँस बोली, "वह मालिक के कुत्ते की टाँग नहीं है, भाई!" और मेरा हाथ आप ही बढ़कर हीरा के हाथ से जा मिला।

उस वक़्त ज़िन्दगी में पहली बार मैंने पूरी गहराई से महसूस किया कि जब दो मज़दूरों के कमज़ोर हाथ भी मिलते हैं, तो उनमें कितनी ताक़त आ जाती है!

बुद्धू

सूरज की किरनें पीली पड़ने लगीं, तो माँ ने बेटी से कहा, "बेटी, अब तू कपड़े पहन तैयार तो हो जा। तब तक मैं बाहर किसी रिक्शेवाले को देख रही हूँ।" कहकर वह बाहर हो गयी।

बाहर पोर्टिको में नीचे लटक आयी लताओं को हाथ से हटा उसने सामने की सड़क की ओर देखा। एक रिक्शेवाला खाली रिक्शा लिये चला जा रहा था। उसने ज़रा आगे बढ़कर पुकारा, "ओ रिक्शे-वाले! ओ!...."

रिक्शेवाले ने आवाज़ सुन, ठिठककर, आवाज़ की दिशा की ओर मुड़कर देखा। काटेज के सामने उठे हाथ को बुलाते देख उसकी बाँछें खिल गयीं। वह फ़ुर्ती से रिक्शा घुमा उस ओर दौड़ पड़ा। आज निकलते ही उसे एक अच्छी सवारी की उम्मीद खुश कर गयी।

पास आ जाने पर माँ ने कहा, "यहीं रुका रह। अभी आते हैं।" कहकर वह अन्दर घुस गयी।

अन्दर देखा, तो शाल ओढ़े सुधा वैसे ही पलंग पर पड़ी थी। 'अजीब लड़की है!' ओंठों में बुदबुदाते वह उसकी ओर बढ़ी और

बेटी को खुश देखकर वह वैसे ही आत्म-विभोर हो जाती थी, जैसे माली अपने लहलहाते पौधे को देखकर होता है।

बेटी की इच्छा ने कभी कोई प्रतिबन्ध न जाना था। माँ की शीतल, स्नेहमयी छाया में वह नाज़ की पुतली वैसे ही बढ़ी थी, जैसे किसी बड़े आदमी के बाग़ में उसका कोई चहेता पौधा। माँ के प्यारों की बौछार से उसके सुन्दर मुखड़े पर सदा वैसी ही धुली, निखरी मुस्कान खेला करती थी, जैसी शबनम में धुले फूलों पर सुबह में होती है। वह सदा घर में एक बुलबुल की तरह चहकती, एक तितली की तरह थिरकती रहती थी, और माँ उसे देख-देखकर निहाल हो-हो जाती थी। प्रेममयी माँ का घर सचमुच उस बेटी से ही स्वर्गोपम हो गया था। उसके खुश रहते किसी दुख की कल्पना माँ को भूले से भी न होती। लेकिन एक दिन ऐसा हुआ कि माँ के इस सुख को भी दैव ने छीन लिया।

उस समय सुधा के गालों पर अदृश्य रूप से उभरती जवानी गुलाब के फूल खिला रही थी। शरीर धीरे-धीरे गदराया जा रहा था। उसने इन्टर पास कर लिया था। माँ चाहती थी कि लड़कियों के कालेज से ही वह बी० ए० भी करे, पर सुधा वहाँ के सह-शिक्षावाले कालेज में नाम लिखाने के लिए मचल उठी। उसकी कई सखियाँ भी वहीं नाम लिखा रही थीं। आधुनिक लड़कियों को केवल लड़कियों का स्कूल वैसे ही नहीं भाता, जैसे आधुनिक लड़कों को संस्कृत की पाठशालाएँ। सह-शिक्षावाले कालेजों के रोमान्टिक वातावरण की सतरंगी कल्पना शुरू जवानी के दिनों में आनुनिक छोकरों और छोकरियों को कितनी मधुर, कितनी आकर्षक, कितनी लुभावनी लगती है, इसका अन्दाज़ा सहज ही लगाया जा सकता है। सुधा के हृदय में भी अब इसकी प्यास जाग रही थी। केवल लड़कियों के कालेज की नीरसता का खयाल कर उसका मन ऊब-सा जाता था। अब वह पढ़ाई के अलावा कुछ ऐसा

चाहती थी, जिसमें ज़िन्दगी हो, रस हो, रोमांस हो, मधुरता हो, मज़े हों, कुछ साहसिकता, कुछ रोमांचकारी घटनाओं के अनुभव हों।

माँ क्या करतीं। सुधा ने जैसा चाहा, वैसा हुआ। पर इस तरह उसके हठ से माँ को एक बात का तो ज्ञान हो गया कि सुधा अब बच्ची नहीं रही। उसके लिए अब उसे एक और फ़िक्र सताने लगी। वह अब छिपे-छिपे एक ऐसे योग्य युवक की तलाश करने लगी, जिसके साथ बेटी के हाथ पीले कर दे, और उसे भी अपने ही पास रख ले। बेटी को अलग करने की बात तो सोचना भी उसके लिए असम्भव था। बेटी से जुदा होकर वह जी ही कैसे सकती थी। उसके जीवन-चक्र की धुरी बेटी ही तो थी।

उधर माँ अपनी मुश्किल हल करने की सोच ही रही थी कि बेटी ने एक पग और बढ़ा दिया। कालेज के एक युवक से किताबों की लेन-देन से शुरू होकर सम्पर्क बढ़ा। वह युवक सुधा को भा गया। क्यों भा गया, इसका कारण उस युवक में ढूँढ़ने की कोई ज़रूरत नहीं। शुरू जवानी के दिनों में लड़कियों या लड़कों की आँखें इस योग्य होती ही कहाँ हैं कि वे एक-दूसरे में कुछ ढूँढ़कर किसी नतीजे पर पहुँचे। यहाँ तो जो भी पहली नज़र पर चढ़ गया, चढ़ गया। फिर तो आप ही सब ख़ूबियाँ उसी तरह उसमें दिखायी देने लगती हैं, जैसे दिन में ही किसी को चाँद की छिटकी हुई चाँदनी दिखायी देने लगे। बस, एक संयोग की बात है कि कोई लड़का किसी लड़की के सम्पर्क में आया और उसे भा गया। शायद हर लड़की और लड़के की पहली प्रेम-कहानी का आरम्भ इसी तरह होता है। न इसकी कोई विशेष बुनियाद होती है, न कोई विशेष कारण। और अगर कोई होता है, तो वह यही कि हर लड़की इस उम्र में एक युवक से कुछ मीठी-मीठी बातें करना चाहती है, और हर लड़का एक लड़की से। लड़के और लड़कियों का मिलना जिस नज़र से हमारे यहाँ देखा जाता है, उससे लुक-छुपकर

जिस लड़की को जो लड़का, या जिस लड़के को जो लड़की पास में सरलता से मिल जाती है, वही उसे भा जाती है। एक प्रेम की कहानी शुरू हो जाती है। कहने के लिए कह दिया जाता है कि आँखें ही तो हैं, लैला को मजनूँ की आँखों से देखो। पर यह व्यर्थ की बकवास के सिवा कुछ नहीं। बात जो है, वह हमारी सामाजिक व्यवस्था की है। यह समाज जब तक नहीं बदलता; हमारा दृष्टि-कोण जब तक नहीं बदलता; जब तक हम लड़के-लड़कियों को मिलने-जुलने की स्वतन्त्रता नहीं देते; ये ऊल-जलूल, बेबुनियाद, ग़लत-सलत, व्यर्थ की प्रेम-कहानियाँ घर-घर में गढ़ी ही जाती रहेंगी, इन्हें बन्द नहीं किया जा सकता। इज्ज़त, मर्यादा, नीति, धर्म, सदाचार की बड़ी-बड़ी, लाख-लाख बातों में भी इसे बन्द करने की ताकत नहीं है।

और सुधा का खेल शुरू हो गया। उस कालेज में सह-शिक्षा ज़रूर थी, पर ऐसा होने से ही तो वह हमारे समाज से कटकर कोई अलग-थलग संस्था नहीं बन गया था। वहाँ भी लड़के-लड़कियों की वही हालत थी, जो हमारे घरों में होती है। सुधा और वह युवक सब की नज़रें बचाकर ही पास-पास आये थे। कालेज में किसी को इस बात की हवा न लग सके, इसके लिए वे पूरी सतर्कता से काम लेते थे।

जिस तरह दिन-भर का बिछुड़ा बछड़ा शाम को अपनी माँ को देख उसके पास जाने को छटपटा उठता है, उसी तरह कालेज बन्द होने पर अपनी प्यारी माँ से मिलने को छटपटा उठनेवाली सुधा को अब घर लौटने में देर होने लगी। माँ घड़ी देखकर उसके लिए ठीक समय पर नाश्ता तैयार करने की अभ्यस्त थी। न सुधा के लौटने में कभी देर होती थी, न नाश्ता के तैयार होने में। पर अब एक ओर से देर होने लगी, तो दूसरी ओर फ़िक्र ने दिमाग़ में सिर उठाया। थोड़े दिनों तक तो माँ मन-ही-मन घुलती रही। देर की घड़ियाँ धीरे-धीरे बढ़ती गयीं,

और स्वयं सुधा अपनी ओर से बिना पूछे ही सफ़ाई देती गयी, कि आज मैच था, आज सभा थी, आज वाद-विवाद था, आज फलाँने का विदा-भोज था, इत्यादि-इत्यादि। और ऐसा होते-होते एक दिन पूरे तीन घण्टे के इन्तज़ार के बाद भी जब सुधा घर न लौटी, तो माँ का सब्र का प्याला लबालब भरकर छलक उठा। आज उसने निश्चय कर लिया कि अब और अधिक वह अन्धकार में न रहेगी, आज उसे ज़रूर मालूम हो जाना चाहिए कि आखिर सुधा कालेज बन्द हो जाने पर कहाँ रह जाती है।

सुनसान कालेज को देख माँ का माथा ठनका। लौटते-लौटते शायद अपने विचार को ग़लत सिद्ध करने के लिए ही उसने पास के छात्रावास के बरामदे में टहलते एक विद्यार्थी से पूछा, "क्यों, आज शाम को कालेज में कोई सभा-वभा तो न थी?"

"नहीं," उस लड़के ने लापरवाही से उत्तर दे अँधेरे में खड़ी माँ की ओर घूरकर देखा।

माँ वहाँ से लौटी, तो जैसे उसे हौल-सा हो रहा था। सुधा अब तक घर न लौटी थी। अगर इधर रोज़-रोज़ सुधा देर से न आती होती, तो शायद इतनी देर होने पर माँ का कलेजा मुँह को आ जाता कि कहीं किसी दुर्घटना वग़ैरा में तो बेटी नहीं फँस गयी। पर आज उसे इसकी शंका न हुई, फिर भी जो शंका उसे हुई, वह उसे किसी भयंकर दुर्घटना से कम भयावनी न लगी।

वह पोर्टिको में आ हृदय में बेकली लिये बेटी का इन्तज़ार करने लगी। सेविका चार बजे के बाद कितनी ही बार बैठक का चक्कर लगा चुकी थी। उसे मालूम था कि बीबीजी अभी तक लौटी नहीं हैं, और जब तक वह लौटेंगी नहीं, इस घर का सब काम स्थगित पड़ा रहेगा।

बरसात के बादल अचानक आकाश में उमड़ने-घुमड़ने लगे। आकाश और ज़मीन के बीच अन्धकार के सिवा कुछ भी नहीं था।

ठण्डी-ठण्डी हवा सूचना दे रही थी कि पानी अब आने ही वाला है। बैठक की घड़ी ने टन-टन कर नौ बजने की सूचना दी। माँ की घबराहट और भी बढ़ गयी।

सहसा कोठी की चारदीवारी के फाटक के पास दो छायाएँ अन्धकार के पर्दे पर हिलती-डुलती नज़र आयीं। माँ घूरकर उधर देखने लगी। एक छाया सीधी सड़क की ओर जाती नज़र आयी और दूसरी उसकी ओर बढ़ती। माँ समझ गयी कि यह छाया कौन हो सकती है, पर जल्दी में वह निश्चय न कर पायी कि वह क्या करे।

सामने पोर्टिको में खड़ी माँ को देख सुधा सन्नाटे में आ गयी। एक बार घूमकर उसने फाटक की ओर देखा, फिर माँ की ओर बढ़ी, तो जैसे उसके पैर उठते ही न हों, कण्ठ से कोई बोल फूटता ही न हो। यह वही सुधा थी, जो माँ को अपने इन्तज़ार में खड़ी देख, दौड़कर लिपट जाती थी, पर आज........

माँ ने काँपते स्वर में पुकारा, "बेटी!"

सुधा दौड़ती आयी, माँ से लिपटी भी, उसे चूमा भी, पर उन क्रियाओं में वह पहले की गर्मी न थी।

उसे अन्दर ले जाते माँ ने पूछा, "आज इतनी देर क्यों हो गयी, बेटी?"

"मम्मी, आज काले........"

"सो तो मुझे मालूम है। आज मैं भी वहाँ गयी थी।"

"एँ?"

"कुछ नहीं, बेटी, कुछ नहीं! पहले तू हाथ-मुँह धो ले। देख तो तेरा मुँह कैसा सूख गया है! भूख लगी है न खूब!" माँ ने कहते हुए उसे स्नान-कक्ष के दरवाज़े तक पहुँचा दिया। सेविका तौलिया लिये दौड़ पड़ी।

धुक-धुक करता दिल लिये सुधा ने सब-कुछ हमेशा की तरह किया,

पर जो बात माँ के लक्ष्य में आ गयी थी, उसी के कारण उसके हर काम में माँ को परिवर्तन दृष्टिगोचर हुआ। उसे आश्चर्य हुआ कि अब तक वह यह-सब क्यों न लक्ष्य कर पायी थी।

नये प्रेम के कीड़े दिमाग़ में रेंगने लगते हैं, तो गुलगुल बिस्तरे पर भी नींद नहीं आती। हल्की-हल्की, हरी प्रकाश-छाया में टक-टक ताकती सुधा के मस्तिष्क में कैसे-कैसे ख़याल उठ रहे थे, यह सहज ही समझा जा सकता है। सहसा किसी की पद-चाप दरवाज़े पर सुन उसने मुड़कर देखा, तो माँ! चट उसने वैसे ही आँखें मूँद लीं, जैसे बिल्ली को सामने झपटते देख कबूतर आँखें मूँद लेता है। वह जानती थी कि इस वक्त माँ उसके पास क्यों आ रही है।

माँ उसे सोया देख लौट जाने के लिए नहीं आयी थी। साथ ही वह यह भी समझ गयी थी कि बेटी कितनी गहरी नींद में सो रही है! उसने पास जा, उसके बालों पर हाथ फेरते कहा, "बेटी!"

सुधा ने कुनमुनाकर करवट बदल ली, "मुझे नींद आ रही है, मम्मी!"

माँ ने सिरहाने बैठते कहा, "इस उम्र की नींद बड़ी ज़ालिम होती है, बेटी! यह तो वह वक्त होता है कि आँख झपकी नहीं कि बेड़ा ग़ारत!"

सुधा का दिल धक से कर गया। उसने सिर उठा माँ की गोद में रखते कहा, "ऐसा न कहो, मम्मी!"

इस एक वाक्य ने ही जैसे सुधा का दिल खोलकर माँ के सामने रख दिया। माँ ने उसके गाल सहलाते हुए कहा, "तुम्हें तो मैंने पूरी स्वतन्त्रता दे रखी है, बेटी। फिर मुझसे ही यह लुका-छुपी क्यों? क्यों नहीं तुमने कहा मुझसे कुछ?"

सुधा कैसे बताये कि ये सब बातें किसी से कहने की नहीं होतीं। कच्चे दिल में व्यर्थ के डर भी समाये रहते हैं। उसने जैसे लजाकर माँ

के आँचल में मुँह छिपा लिया।

माँ ने कहा, "कौन है वह?"

सुधा क्या बताये? क्या जानती है वह उसके विषय में? और जानने की ज़रूरत भी क्या है? वह तो बस यही जानती है कि वह उससे प्रेम करती है।

"शायद तुम उसके विषय में उसके नाम के सिवा और कुछ नहीं जानती। खैर, कल शाम को उसे यहीं ले आना चाय पर। मैं भी तो देख लूँ। मैं यह नहीं चाहती कि तू अपना इतना बड़ा घर रहते किसी के साथ बाहर, चोर की तरह, बेघर-बार की तरह घूमे। समझी?" कहकर माँ उठने लगी, तो सुधा उससे लिपट गयी। बेटी उससे रोज़ एक बार नहीं, कई बार लिपटती और उसे चूमती थी। पर आज का उसका लिपटना, उसका चूमना! और माँ न जाने कितनी पुरानी बातों को आँखों में लिये वहाँ से हट गयी।

दूसरे दिन माँ का ख़याल था कि सुधा कालेज के बाद सीधे उसे लेकर घर आयगी। इसी लिए उसने चाय के सब सामान तैयार कर रखे थे। पर जब देर होने लगी, तो उसकी समझ में आज इसका कोई कारण न आया। भला आज उन्हें इधर-उधर लुक-छुपकर जाने की क्या ज़रूरत? किसी बात को जानकर उसके लिए परेशान होना उतना दुखदायी नहीं, जितना किसी समझ में न आनेवाली बात के लिए। माँ बेहद घबरा गयी।

शाम का धुँधलका झुक जाने पर जब वह कालेज की ओर जाने की सोच ही रही थी कि सहसा सन्नाटे में हवा के एक झोंके की तरह सुधा आ माँ की गोद में गिरकर फूट-फूटकर रो पड़ी। उसका चेहरा बेहद तमतमाया हुआ, आँखें लाल और कपड़े अस्त-व्यस्त-से थे।

माँ ने घबराकर पूछा, "क्या हुआ, बेटी? वह......."

"जंगली ! कमीना !" दाँत किटकिटाकर, नथुने फुला सुधा ने नफ़रत और गुस्से-भरे स्वर में कहा, "उसकी बात न करो, मम्मी !"

उसे अपनी गोद में सटा, उसकी पीठ को सहलाते हुए माँ ने कहा, "नहीं करेंगे। पर तू तो शान्त हो।" कहकर उसका हाथ अपने हाथ में लिया, और कलाई पर जो नज़र पड़ी, तो जैसे उसके दिल की धड़कन ही एक क्षण को रुक गयी ! नयी चूड़ियों के चार जोड़ों में अब वहाँ एक ही जोड़ा रह गया था, कई जगह खरोंचें लगी हुई थीं, एक जगह तो खून भी बह रहा था। वह जैसे चीख़-सी पड़ी—"बेटी !"

"उस भूखे भेड़िये ने, मम्मी, मम्मी........" कहकर वह और भी सुबुक-सुबुककर, माँ की छाती में मुँह रगड़ते हुए रो पड़ी। उसका रोआँ-रोआँ एक गुस्से से काँप रहा था। काश, उसका वश होता ! उसने बिलखते हुए कहा, "अब मैं उस कालेज में न पढ़ूँगी ! अब मैं........"

"अच्छा-अच्छा," माँ ने गुस्से का घूँट पीकर कहा। वह बहुत-कुछ उससे पूछना चाहती थी। किसकी मजाल कि उसकी बेटी को.... पर वह कुछ बोल न सकी। उसकी साँस फूल-सी रही थी। वह बेटी को ही सँभालने-समझाने में लग गयी।

इस भयंकर अनुभव के बाद सुधा भयभीत और उदास रहने लगी। उसने पढ़ना छोड़ दिया। दिन-भर चुपचाप बैठी न जाने क्या-क्या सोचा करती। रात में नींद में न जाने कैसे-कैसे भयावने सपने देखती। बुलबुल की तरह चहकती, तितली की तरह फुदकती सुधा कुछ ही दिनों में ऐसी गम्भीर, ऐसी उमंगहीन, ऐसी सूखी-सी हो गयी कि माँ को रोना आने लगा। वह उसका दिल बहलाने के लिए उसे बाहर ले जाना चाहती, कहीं का सैर कराना चाहती, सिनेमा दिखाना चाहती, पर वह कुछ भी न मानती। उसके कच्चे, कोमल, अनुभवहीन हृदय पर जो चोट लगी थी, उसने उसे बीमार-सा कर दिया था। किसी

भी चीज़ में उनका मन ही न लगता था।

जब वह पीली पड़ने लगी, तो माँ ने डाक्टर से राय ली। डाक्टर ने किसी भयंकर रोग की शंका करके उसे तुरन्त पहाड़ चले जाने की राय दी। वह बेटी को लेकर ऊटी चली आयी। सेविका साथ आने के लिए तैयार न हुई। माँ को ही यहाँ सब-कुछ करना पड़ता। सुबह-शाम किसी रिक्शे पर वह सुधा को घूमने के लिए भेज देती और स्वयं उसके लिए सामान तैयार करने में जुट जाती। माँ के आग्रह के कारण यहाँ के नये, अपरिचित वातावरण में सुधा बाहर जाने लगी थी।

(२)

वह रिक्शावाला किसी जंगल में अपने आदिवासी कुटुम्बियों को छोड़कर यहाँ भाग आया था। प्रकृति की गोद में पलने के कारण उसका शरीर इतना सुगठित और सुन्दर था और उसके अंग-अंग की रेखाएँ इतनी साफ़ और तेज़ थीं कि लगता, जैसे किसी रोमन कलाकार ने आबनूस को तराशकर एक उभरते नौजवान की मूर्ति खड़ी कर दी हो। किराया का रिक्शा दिन-भर चला, रात को कहीं सो रहता। पहाड़ पर भी उसे कपड़े की शायद कोई ज़रूरत न थी। वह यहाँ के लोगों की बोलियाँ कतई नहीं समझता। एक बोली हो, तो वह समझने की कोशिश भी करे। उसे तो जितनी सवारियाँ मिलतीं, उतनी ही वह बोलियाँ सुनता। हाँ, उसने यहाँ की मशहूर जगहों के नाम, कुछ पैसे की बातें और योंही कुछ मोटी-मोटी बातें हर भाषा की सीख ली थीं। इन बातों को भी वह बोल न पाता। बस समझ लेता था। यों शायद ही वह किसी से कोई बात करता। एक बार एक मेम को लेकर वह बोटैनिकल गार्डन में गया था, तो उसने उससे फूल वेचनेवाले के पास से फूलों का गुच्छा लाने के लिए संकेत किया था।

दाम के लिए जो पाँच रुपये का नोट उसने दिया था, उसका बचा पैसा जब वह उसे लौटाने लगा, तो उसने उसे वह बख़्शीश में दे दिया था। तभी से जब भी वह किसी मेम को लेकर यहाँ आता, बिना उसके कहे भी वह एक फूलों का गुच्छा उसे लाकर दे देता। ऐसा करने से उसे हमेशा कुछ-न-कुछ फ़ायदा ही होता।

सुधा रिक्शे से उतरकर एक लताओं से आच्छादित बेंच पर बैठ गयी। रिक्शेवाला एक ओर रिक्शा खड़ा कर माली की ओर बढ़ गया। सुधा की आँखें रंग-बिरंगे फूलों, भाँति-भाँति के सुन्दर पौधों, तरह-तरह की लताओं की उस प्रदर्शनी में घूमने लगीं। उसे यह जगह बहुत भली लगती थी। उन हरे-भरे पौधों, झूमती लताओं, हँसते, मुस्कुराते सुन्दर फूलों से गह-गह करते वातावरण में उसका उदास हृदय उत्फुल्ल-सा हो जाता। वह सब-कुछ भूलकर, मुग्ध हो उन्हें निहारती रहती।

सहसा अपने सामने एक फूलों का गुच्छा देखकर उसने आँखें उठायीं, तो रिक्शेवाले को सामने देखा। रिक्शेवाला आँखें झुकाये खड़ा था।

किसी रिक्शेवाले के चेहरे का नक्शा इतना निर्दोष होगा, इसकी कल्पना भी सुधा ने कभी न की थी। एक क्षण उसे मुग्ध-सी देखती-सी रह गयी। आबनूस की तरह चमकता काला रंग भी इतना सुन्दर, आकर्षक लग सकता है, यह उसने कभी भी न सोचा था। उसके लिए यह एक बिलकुल नया, अद्भुत अनुभव था। और फिर वह बोलता हुआ भोलापन जो उसके चेहरे से बरस रहा था! वैसा तो उसने किसी बच्चे के सिवा और किसी चेहरे पर कभी देखा ही न था। उसने फूलों का वह गुच्छा उससे ले लिया। रिक्शेवाला एक ओर हट गया।

गुच्छे को सूँघने के लिए उसने उठाया ही था....कि सहसा उसे वह युवक याद आ गया। वह भी रोज़ शाम को उसे फूल देता था।

वह फूल उसे कितने प्यारे लगते थे ! उन्हें वह आँखों से लगा लेती थी, ओंठों से चूम लेती थी। ओह, वह उस युवक को कितना चाहती थी!....और उसकी आँखों से टप-टप आँसू उसके हाथ के गुच्छे पर गिरने लगे। रिक्शेवाला एकटक उसकी ओर देखने लगा। भला यह मेम रो क्यों रही है?

फिर सुधा की आँखों में उभर आयी वह कोमलता सहसा कड़ी पड़ गयी। उसे उस युवक का उस दिन का जंगलीपन याद आ गया। किस तरह वह कपड़े बदलकर उसके साथ उसके घर चलने के लिए अपने किराये के कमरे में उसे लिवा ले गया। और वहाँ एक भूखे भेड़िये की तरह उस पर झपट पड़ा। ओह, उसके चंगुल से निकलने के लिए उस दिन उसे किस तरह जान पर खेलना पड़ा। उस वक़्त वह कितना भयंकर, कुरूप, कुत्सित और विकृत दिखायी पड़ता था!.... वह सब याद कर वह गुस्से से लाल हो काँप-सी उठी। रिक्शेवाले ने उसका वह रूप देखा, तो उसे लगा कि शायद इस मेम का दिमाग़ ख़राब हो गया है, जो क्षण में ही रो देती है, और क्षण में ही गुस्से से लाल भी हो उठती है। उससे वह कुछ डर-सा गया।

उसके काँपते हाथों से गुच्छा नीचे गिर गया, तो सहमते हुए ही उसने उसे उठाकर उसके हाथ में पुनः दे दिया। इस बार डरते हुए ही उसने उसकी ओर देखा भी। उसके पीले पड़ते चेहरे पर छायी निरीहता को देख जैसे उसे लगा कि उससे डरने की कोई बात नहीं है। उसे उस वक़्त कुछ मोह भी लगा कि यह सुन्दर मेम ऐसी पीली क्यों पड़ गयी है, इतनी दुर्बल क्यों हो गयी है?....

उसे पास से सुधा ने फिर एक बार देखा। सचमुच कितना स्वाभाविक भोलापन था उनके श्यामल मुखड़े पर। उसने मन में ही सोचा कि जितनी मासूमियत इसकी आँखों से टपक रही है, क्या उतना ही मासूम इसका दिल भी होगा? और उसे ख़याल आया कि वह

युवक भी पहले कितना भोला, कितना प्यारा लगता था, पर उसके अन्दर........ओह ! शायद सब मर्द ऐसे ही होते हैं। यह रिक्शेवाला भी शायद........उसकी निगाह फिर उस पर उठ गयी। और उसे लगा कि उस युवक और इस युवक में ज़रूर कोई अंतर है। इस तरह सब के विषय में उसे एक ही धारणा नहीं बना लेनी चाहिए। यह जंगलों का वासी शायद फ़रेब, झूठ और मक्कारी से परे हो, अन्दर-बाहर से एक ही जैसा हो।

(३)

माँ को एक नौकर के बिना बहुत तकलीफ़ हो रही थी। सुधा शाम को जब लौटकर आयी, तो उसने माँ से उस रिक्शेवाले को रख लेने के लिए कहा। माँ ने किसी तरह संकेत-संकेत में ही उससे बातें कीं। वह तैयार हो गया। दूसरे दिन माँ ने एक रिक्शा भी खरीद लिया। सुबह-शाम वह सुधा को हवा खिलाने ले जाता और बाक़ी समय घर का काम करता।

सुधा की जब भी उस पर नज़र उठती, वह उसे अपनी ओर उसी तरह एकटक देखते पाती, जैसे चकोर चाँद की ओर देखता है और उसकी आँखों में सदा एक ऐसी कोमल चमक छायी रहती, जो हृदय में कोमल-कोमल, मधुर-मधुर भावनाएँ उठने पर आँखों में आप ही उभर आती है। सुधा को उसका वैसे देखना बड़ा भला लगता, उसकी आँखों की वह चमक बड़ी लुभावनी लगती। उसके ओंठों पर एक नरम-नरम मुस्कान उभर आती। उसकी मुस्कान देख वह भी मुस्करा पड़ता और आँखें झुका लेता।

बिना कहे ही वह सुधा को बड़े सुन्दर-सुन्दर स्थानों पर सुबह-शाम ले जाता। उन स्थानों पर कितनी ही बार वह कितने ही जोड़ों को ले

गया था। वहाँ उसने लुक-छुपकर उनकी रंगरेलियाँ भी निर्भाव आँखों से देखी थीं। वह सब उसे अच्छा लगता था। कभी-कभी उसके दिल में भी वैसा ही करने की बात उठती थी। लेकिन यह भाव कुछ-कुछ वैसा ही होता, जैसे किसी बड़े को कुछ करते देख लड़का भी करना चाहे।

एक दिन सुबह सूरज निकल आने पर वह उसे स्टेशन के पास-वाले झील पर ले गया। झील का जल शान्त, निर्मल और सुनील था। ठण्डी हवा बहुत धीमे-धीमे चल रही थी। आसमान पर छाये हल्के बादलों के कारण सूरज की मद्धिम धूप चाँदनी की तरह रहस्यमय हो उठी थी। दूर-दूर तक सिर पर हरियाली की काली-काली छतरियाँ लिये युकलिप्टस के लम्बे-लम्बे खड़े हुए वृक्ष बादलों की पृष्ठिभूमि में खिंचे हुए छाया-चित्रों की तरह लग रहे थे। कभी-कभी कोई बादल का टुकड़ा पास से बेंच पर बैठी सुधा के कपड़ों को भिगो, उसके नंगे बालों में नन्हें-नन्हें मोती पिरोकर चला जाता। सुधा मुग्ध हो इधर-उधर देख रही थी, और पास ही सब्ज़े पर, चुप-चाप बैठा हुआ रिक्शे-वाला मुग्ध हो उसे देख रहा था। उसे वैसे देखते देख सुधा को एक चित्र की याद आ गयी। उस चित्र का शीर्षक 'प्रेम-याचना' था। प्रेमी अपनी प्रेमिका के चरणों में बैठकर आँखों से ही प्रेम को भीख माँग रहा था। उस मुद्रा में वह सुधा को बड़ा ही सुन्दर लगा। उसके जी में आया कि वह उसके लम्बे-लम्बे, काले, घुँघराले बालों में हाथ फेरे, उसकी उन पलकों पर हाथ फेरे और कहे कि....कि....

धीरे-धीरे सुधा की खुशी वापस आने लगी। चेहरे पर छायी उदासी छटने लगी। आँखों की सफ़ेदी में लाली झलकने लगी। सूखते हुए शरीर पर फिर मांस दौड़ने लगा। माँ को लगने लगा कि उसकी उजड़ी हुई डाल के हरे-भरे होने मे अब देर नहीं। उसमें फिर पल्लव फूटेंगे, कलियाँ खिलेंगी। उसका घर फिर बुलबुल की चहचहाहट सुन

खुशी से झूम उठेगा।

पहले वह जब उसे गोद में ले बिस्तर से उतारती थी, तो रोज़-रोज़ वह उसे हल्की होती महसूस होती थी, पर अब रोज़-रोज़ वह भारी होती लगने लगी। और अभी महीना भी न बीता था कि एक दिन सुबह उसे गोद में उठाती हुई माँ ने हाँफकर कहा, "बेटी, अब तो तू खुद ही उतरा कर। मैं बूढ़ी हो गयी हूँ न। अब मुझमें इतनी ताक़त नहीं कि तुझे गुड़िये की तरह गोद में उठा लिया करूँ।"

और खिलखिलाकर, 'हूँ' कहकर जब सुधा उससे लिपट गयी, तो अपने अंक में उसके गदराये शरीर को समेटते हुए माँ खुशी से पागल हो उठी। यौवन उसके अंग-अंग से फूटा पड़ता था। गालों पर गुलाब खिल गये थे। आँखों में जैसे लबालब शराब भर गयी हो। पहले भी उस पर जवानी आयी थी, लेकिन उसका मुकाबिला इससे नहीं हो सकता था। वह अर्द्ध-स्फुटित कली थी, तो यह खिलखिलाता हुआ फूल।

रिक्शेवाले की बोलती आँखों की मूक भाषा से ही अब सुधा को सन्तुष्टि न होती। अब वह उससे और भी कुछ चाहने लगी। माँ से कहकर उसने उसके लिए अच्छे कपड़े बनवा दिये। अब वह उसे साथ ले पैदल ही सैर करने जाने लगी। माँ से कह दिया कि अब उसमें काफ़ी ताक़त आ गयी है। पैदल चलने से उसका स्वास्थ्य और भी निखरेगा। अब वह रिक्शेवाला नहीं रह गया, सुधा का अंग-रक्षक बन गया।

सुबह की ऊदी धूप और शाम के धुँधलके में एकान्त पहाड़ी के छाँव में वे पास-पास बैठे होते, तो सुधा उससे कुछ मीठी-मीठी बातें करना चाहती। पर वह तो वैसे ही उसे मुग्ध हो निहारा करता, तका करता। सुधा उसे छेड़ती, तो उसका चेहरा खुशी से खिल उठता, आँखों की चमक पर एक मुस्कान थिरक जाती। उसकी मुग्धता और

भी बढ़ जाती। पर उसके मुँह से वाणी न फूटती। सुधा परेशान हो-हो रह जाती।

थोड़े ही दिनों में सुधा ने देखा कि अब वह वैसा न रह गया था। वह अब कभी-कभी कुछ उदास भी दिखायी देता। उसके स्वास्थ्य का तेज भी कुम्हलाया जा रहा है। गालों की हड्डियाँ भी उभरने लगी हैं। पर उसकी आँखों की वह मुग्धता, वह चमक, वह एकाग्रता रोज़-रोज़ बढ़ती जा रही है, बढ़ती जा रही है।....

उसका उदास मुखड़ा देख सुधा को दुख होता। जिसके कारण वह पुनः अपनी जवानी, ख़ुशी, प्यार लौटा पायी है, उसकी उदासी और दुख का कारण वह न समझे, ऐसा कैसे हो सकता है? वह जानती थी कि वह क्यों घुलता जा रहा है। वह नहीं चाहती थी कि वह इस तरह घुले। वह चाहती कि....कि....

और एक रात। माँ पास के पलंग पर गाढ़ी निद्रा में सो गयी, तो सुधा धीरे से अपने पलंग से उतरी और बाहर उसके कमरे के दरवाज़े पर जा खड़ी हो गयी। अन्दर से ऐसी आवाज़ें आ रही थीं, जैसे कोई पीड़ा से धीरे-धीरे कराह रहा हो। वह भिड़े दरवाज़ों को खोल अन्दर गयी और दरवाज़ों को भेड़कर जो उसकी ओर देखा, तो अँधेरे में उसकी दोनों आँखें वैसे ही चमक रही थीं, मुग्धता लिये, एकाग्रता लिये। अपने काँपते शरीर पर काबू पा वह उसके सिर के पास बैठ गयी। वह वैसे ही एकटक देखता लेटा रहा।

सुधा सोचती थी कि वह उसका मतलब समझ जायगा, और.... और....पर वह उसी तरह पड़ा रहा, तो सुधा झुँझला उठी। झुँझलाहट में ही उसने उसका सिर उठा अपनी गोद में रख लिया और अपने जलते ओंठों से उसके ओंठ चूम लिये। वह ओंठ उस समय उसे बर्फ़ की तरह ठण्डे लगे। उसमें जैसे उसकी कोई प्रतिक्रिया न हुई। उसका शरीर जैसे एक लाश की तरह पड़ा रहा। बस, आँखों में ही जैसे सारा

जीवन आ समाया था, जिनसे वह उसे उसी मुग्धता से देख रहा था, एकटक।

सुधा ने आवेश में आकर उसकी उन आँखों को कई बार चूमा और उसके सिर को अपनी धौंकनी की तरह उठती-बैठी छातियों में में दबा लिया। उसकी पीठ पर हाथ फेरे। फिर भी उसके शरीर में कोई हरकत न हुई। वह एक पत्थर के टुकड़े की तरह वैसे ही पड़ा रहा। आखिर क्षुब्ध हो सुधा ने उसके मुँह को हाथों से ऊपर उठाकर कहा, "डरो नहीं, मैं तुम्हें प्यार करती हूँ। तुम भी मुझे प्यार करते हो न! आओ!" पर वह वैसे ही यन्त्र की आँखों की तरह उसे देखता रहा, जैसे वह कुछ भी न समझता हो। सुधा का चेहरा सहसा विकृत हो उठा। उसने अपनी गोद से उसका सिर उठा नीचे पटक दिया और खड़ी हो दाँत किटकिटाकर बोली, "बुद्धू!" और शेरनी की तरह बिफरती, पैर पटकती कमरे से बाहर हो गयी।

(४)

रात रहे ही सुधा ने माँ को उठाया और कहा कि आज ही सुबह की गाड़ी से अपने शहर वापस चलेंगे।

माँ को सहसा उसके उतावलेपन का कारण मालूम न हुआ। फिर भी उसने कुछ कहा नहीं। उसके देखने में भी अब यहाँ रुकने की कोई ज़रूरत न थी। सुधा पूर्ण रूप से स्वस्थ हो चुकी थी। उसने रिक्शे-वाले को जगाकर सामान बाँधने के लिए कहा।

आज बहुत दिनों के बाद उसने फिर रिक्शा खींचा। माँ-बेटी स्टेशन पर रिक्शे से उतरीं, तो माँ ने कहा, "यह रिक्शा तू रख ले। कमाना, खाना।" फिर बख़्शीश में कुछ रुपये भी उसके हाथ में दे दिये। उसकी आँखों में आज पहली बार आँसू डबडबा आये।

माँ ने बेटी से कहा, "बड़ा अच्छा है बेचारा! देखो न, रो रहा है।"

सुधा ने उसकी ओर गुस्से और नफ़रत-भरी आँखों से देखा, उसकी आँखों की उस चमक, उस मुग्धता, उस एकाग्रता पर आँसू लहरें ले रहा था। सुधा ने मुड़कर माँ से कहा, "चलो, मम्मी! यह तो बिलकुल बुद्धू है! इससे तो वह भूखा भेड़िया ही अच्छा था!"

माँ कुछ समझ न सकी। वह उससे कुछ पूछना ही चाहती थी कि प्लेटफ़ार्म पर शोर हुआ। गाड़ी प्लेटफ़ार्म पर आ लगी थी।

◆

डाकुओं का सरदार

किरन बराबर बैलगाड़ी बेलथरा टीसन (स्टेशन) पर पहुँच गयी। कवलापति गाड़ीवान के पीछे बैठा मुरली तुरन्त झपटकर कूदा और सामने टीसन की चढ़ाई पर जाते एक आदमी के पास लपककर उसने पूछा, "क्यों भाई, पूरब की गाड़ी अभी नहीं आयी न?"

उस आदमी ने मुरली की ओर एक नज़र ऐसे देखा, जैसे वह कोई बांगड़ू हो। मुरली की पलकें एक निरीहता से उसकी नज़र की चोट खाकर झपक गयीं। वह फिर अपना सवाल दुहराना ही चाहता था कि वह आदमी एक सर्वज्ञ की लापरवाही से आगे बढ़ता बोल पड़ा, "अभी दो घण्टे की देर है।"

"दो घण्टे की?" मुरली के मुँह से यह अनावश्यक प्रश्न निकला, तो उस सफ़ेदपोश आदमी ने मुड़कर उसकी ओर ऐसे घूरकर देखा कि मुरली झट पलट पड़ा।

मुरली का खयाल था कि गाड़ी ज़रूर छूट गयी होगी। इसी खयाल के कारण वह रास्ते-भर कवलापति को बार-बार खोदता आया था कि बैलों को वह तेज़ हाँके। कवलापति के बार-बार यह कहने पर

भी कि वह बीस साल से गाड़ी हाँक रहा है और कभी भी उससे कोई गाड़ी नहीं छूटी, मुरली न माना था और अपने उतावलेपन में बैलों की पीठ फोड़वाकर ही दम लिया था। कवलापति किस पानी का आदमी है, यह मुरली ही क्या, सारा गाँव जानता था। कितनी मिन्नत करने पर उसने गाड़ी जोती थी। नहीं तो आजकल अशर्फ़ी मिलने पर भी वह गाड़ी नहीं जोतता। वह तो पड़ोस के लेहाज़ की बात थी कि मान गया। फिर भी मुरली ने रास्ते-भर उसे इतना तंग किया! अब कवलापति जब सुनेगा कि गाड़ी में अभी दो घण्टे की देर है, तो? मुरली सहम गया। सिर झुकाये ही वह गाड़ी के पास खड़ा होकर धोती की गाँठ से पैसे खोलने लगा।

एक-एक मुट्ठा पुआल बैलों के सामने फेंककर कवलापति ने मुरली की ओर मुँह किया, तो मुरली ने उसके हाथ में एक-एक के तेरह नोट पकड़ा दिये। कवलापति ने उन्हें गिनकर, एक नोट मुरली की ओर बढ़ाते हुए कहा, "एक जियादा दे दिया है।"

मुरली आँखें झपकाकर मुस्कराया और लटपटाती आवाज़ में सहमा-सहमा बोला, "एक मैंने इनाम दिया है। बैलों ने बहुत मेहनत की है। उन्हें इसकी खली-भूसी खिला देना।" मुरली क्या, सारा गाँव जानता था कि कवलापति की सबसे बड़ी कमज़ोरी ये बैल हैं। कवलापति को खुश करने के लिए मुरली का यह खयाल था कि यह लुक्मा ज़रूर कारगर होगा।

लेकिन कवलापति ने अपने अन्दर उमड़ते-घुमड़ते गुस्से और नफ़रत से ऐंठकर वह नोट मुरली के मुँह पर दे मारा। और मुँह की बिगड़ी रेखाओं को और भी बिगाड़कर कहा, "कुछ मेरी कमाई से बैलों का पेट भरा, तो अब कुछ तेरे इनाम से भरेगा! चले जा, बच्चा! बहू को लेकर जा रहा है, नहीं तो आज तेरा गला टीपे बिना न छोड़ता! तुझे का मालूम कि जितने बैलों की पीठ पर पड़े हैं, उससे

सौगुने मेरी पीठ पर पड़े हैं !" और लगा कि बूढ़ा कवलापति अब रो देगा। गुस्से को उसने दबाया, तो उसकी आँखें भर आयीं। सिर झुकाये ही वह बैलों की पीठ पर एक-एक हाथ रखकर कुछ बुदबुदाने लगा।

बैल चारे पर मुँह न मार रहे थे। उन्होंने कवलापति के हाथ के पास अपने रोओं को फड़काया और अपना मुँह कवलापति की गोद की ओर बढ़ा दिया। कवलापति के हाथ उनके माथे पर सहलाने लगे और उसकी भरी आँखें झपकीं, तो टप-टप बूँदें चू पड़ीं।

सहमा-सहमा मुरली पीछे-पीछे अपनी बहू को लिये टीसन की ओर जाने लगा, तो सहसा कवलापति का गुस्सा उतर गया। उस वक़्त उसे ऐसा ही लगा, जैसे अपने बच्चे पर गुस्सा उतर जाने के बाद माँ-बाप को लगता है। और उसके मुँह से एक ठण्डी साँस के साथ निकल गया, "दो आदमी और गाँव छोड़ गये !"

कितनी तेज़ी से लोग गाँव छोड़कर भागे जा रहे हैं ! जहाँ जिसका सींग समाता है, भागा जा रहा है। मालूम होता है कि पूरा गाँव ही खाली हो जायगा। क्या करे आदमी ? जब खाने को दो मुट्ठी अन्न भी न मिले, तो कैसे रहे ? लेकिन वे क्या करें, जिनका कुल सहारा गाँव ही है ?....सब मर जायेंगे, सब मर जायेंगे ! और कवलापति के मुँह से एक आह निकल गयी। उसने झुककर दोनों हाथों से मुट्ठी-मुट्ठी-भर पुआल उठा बैलों के मुँह के पास किया। बैलों ने ज़ोर-ज़ोर से सूँघा और मुँह हटा लिया। तब कवलापति ने खुद दोनों मुट्ठियाँ नाक के पास लाकर सूँघीं। महक से उसकी नाक ही फट गयी। उसके जी में आया कि वह पुआल कहीं दूर फेंक दे, लेकिन तभी उसे ख़याल आया कि इसके सिवा है भी क्या ? उसकी मुट्ठियाँ बेजान हाथों की तरह खुल गयीं। पुआल ज़मीन पर बिखर गया।

बैल उसकी ओर रोती आँखों से देख रहे थे। शाम के धुँधलके

में भी उनके सफ़ेद चेहरों पर काली-काली आँखों के कोनों से नथिये की बग़ल-बग़ल दो काली मोटी लकीरें नथनों तक साफ़ दिखायी दे रही थीं। कवलापति ने उन लकीरों पर हाथ रखे, तो वे तर हो गये। कितना खून जलकर एक बूँद आँसू बनता है, कवलापति जानता था। अँगोछे के कोने से उन लकीरों को साफ़ करते स्वयं उसकी आँखों में भी आँसू भर आये। आदमी के आँसू सह लेना उतना मुश्किल नहीं, जितना बेज़बान जानवर के। और वह भी कवलापति के लिए अपने बैलों के आँसू!

कवलापति एक जोड़े बढ़िया बैलों का अरमान लेकर ही जवान हुआ था। उसका बाप गाड़ी से कमाना जानता था। उसे अच्छे बैल रखने का कभी शौक़ न हुआ था। वह चाहता था कि कवलापति भी इस गुर को समझ ले कि अच्छी कमाई मामूली बैलों से ही होती है। बढ़िया बैलों के तो सिंगार में ही सब-कुछ स्वाहा हो जाता है। लेकिन जवान कवलापति ने बाप की इस बात पर कभी कान न दिये थे। उसे ज़िद हो गयी थी कि गाड़ी वह तभी हाँकेगा, जब मनमाफ़िक़ जवार (गाँव के आसपास) के सभी गाड़ीवानों के बैलों से निकलकर उसके पास बैल होंगे। टिक-टिक टुटही गाड़ी हाँकना उसे पसन्द नहीं। और वह गाड़ी से मुँह मोड़कर खेती की ओर झुक गया।

लेकिन वहाँ भी उसे उन्हीं बैलों से हल जोतना पड़ता। उसके जवान हाथों का पैना उन बैलों को देखकर शरमा जाता। दिल में एक हूक उठती। वह अपनी जवानी के सारे अरमान मुँह में लाकर कहता, "काका, इन मरियल बैलों को तो हाथ लगाने को जी नहीं चाहता। तुम्हारी कसम, काका, ला दो एक बढ़िया जोड़ी! फिर तुम से दुगुनी कमायी करके न दिखा दूँ, तो बात का ?"

लेकिन काका मुँह फेरकर कहता, "अबे, तू का जाने ? कमाने-

वाले बैल तो यही हैं। द्वार की शोभा मुझे नहीं बढ़ानी। मुझे तो काम चाहिए, काम !"

क्या करता बेचारा कवलापति ? मन मारकर निरुत्साहित-सा एड़ियाँ रगड़ने लगा। मन के अरमान मौक़े के इन्तज़ार में बैठे रहे।

काफ़ी उम्र पाकर जब काका मरा, तो कवलापति की जवानी उखड़ गयी थी। लेकिन जवानी का वह अरमान जैसे अब भी जवान ही था। अपनी मलिकाई में उसने पहला काम यही किया। पुरानी गाड़ी और बैल औने-पौने पर बेच दिये। काका अच्छी रक़म जोड़ भी गया था। सो, पूरी कमर मज़बूत कर वह ददरी के मेले में गया और चार दिन तक सारा मेला हींड़कर इस जोड़ी को चुना।

उसके दरवाज़े पर उस दिन मेला लगा रहा। बैल क्या थे, पूरे शेर थे। और जोड़ी क्या थी, जैसे एक ही साँचे में ढली दो मूरतें। लोग देखते और निहाल हो-होकर तारीफ़ करते। कवलापति की घनी मूँछों में उस दिन एक नया बाँकपन आ गया था। जवानी जैसे फिर लौट आयी थी। उस दिन रात-भर वह जागता रहा। और क्या-कुछ न उन बैलों को खिला-पिला दे, ऐसा उसे हुआ रहा। और वह उन्हें सहलाता रहा, अँगोछे से झाड़ता-पोंछता रहा। और उनकी गरम-गरम, स्वस्थ, गेहुँअन की तरह फुँफकारती साँसों से अपने फेफड़ों को भरता रहा। उस दिन उसकी छाती कितनी फूल उठी थी !

लोगों ने देखा कि कवलापति खिलाना-पिलाना ही नहीं, काम लेना भी जानता है। खेत हो या सड़क, लोग कवलापति को अपने बैलों को हिरनों की तरह उड़ाये चले जाते देखते और देखते ही रह जाते। घण्टों का काम वह मिनटों में पूरा करता। कौड़ियों की जगह वह रुपये पैदा कर लेता। छाती फाड़कर वह काम लेता और हाथ खोलकर वह खिलाता। कमानेवाले की ख़ूराक़ में कटौती करना उसने न जाना था। क़मानेवाले खायेंगे नहीं, तो कमायेंगे क्या ? और यही कारण था

कि कभी किसी ने उन बैलों का एक रोआँ गिरा न देखा। मजाल है, कि कोई मक्खी उन पर बैठ जाय! आईने की तरह चमचम शरीर उनका ऐसा कि नज़र छलक जाय!

और कवलापति और उसके बैल दूर-दूर तक मशहूर हो गये। जैसे पानीदार वे बैल, वैसा ही पानीदार कवलापति। बैलों ने कभी न जाना कि छिकुन (छड़ी) क्या होती है और कवलापति ने न जाना कि एक बात क्या होती है। किसी महाजन को कभी कहने का मौक़ा न मिला कि कवलापति वक़्त पर नहीं पहुँचा या उसकी गाड़ी से एक दाना उठ गया। राह-घाट पर लोग मिलते, तो जुहार करते कहते, "राम-राम, चौधरी, जरा रुककर पानी-वानी तो पी-पिला लो।" और कवलापति कहता, "राम-राम, भाई, का बताऊँ, घर के खाये-पीये ये टीसन पर ही मुँह खोलते हैं। बीच का दाना-पानी इन्हें भाता नहीं। रोकने की कोसिस भी करूँ, तो का ये रुकेंगे?" और लोग पूछते, "समझ में नहीं आता, चौधरी, कि कौन-सा दाना तुम खिलाते हो इन शेरों को? मालूम होता है, जैसे रोज रोआँ झाड़ते हों।" कवलापति मुस्कराता और बैलों के पुट्ठों को सहलाता कहता, "हलाल का यह दाना है, भाई। इससे बढ़कर भी कोई दाना होता है, मैं का जानूँ।"

वक़्त बीतता गया। शोहरत में चाँद-सितारे टँकते गये। न बैलों में कोई फ़र्क़ नज़र आता, न कवलापति में। जैसे उनकी जवानी को घुट्टी में कौए की जीभ पड़ गयी हो। ऐसे हरे-हरे दिखते वे, जैसे सदा बहार। लोग देखते और रश्क करते।

लेकिन आखिर एक दिन वह भी आया, जब सदाबहार मुरझा गया। कड़ी-से-कड़ी, पत्थर-तोड़ मेहनत की छाती पर जो हमेशा मुस्कराते हुए दनदनाकर निकल जाते, उन्हें इस आग-लगे ज़माने ने ऐसा धर पटका, कि बस चित होकर रह गये।

दूसरी लड़ाई के बाद का ज़माना। महँगाई, कोटे और कन्ट्रोल

ने रोज़ी-रोज़गार को चौपट करके रख दिया। कवलापति की गाड़ी बेकार रहने लगी। टीसन से माल आना-जाना बन्द हो गया। बैठकी पड़ने लगी। खुले हाथों में था क्या कि कवलापति मुट्ठी बाँधता? कमाई न रही, तो ख़ूराक कहाँ से जुटे? जो नाँद भूसे और दाने के ज़ोर से रात-दिन उबलते रहते थे, उनमें कवलापति को अब झाँककर देखना पड़ता। मुँह गर्दन तक डुबाकर भड़र-भड़र की रागिनी से महल्ले को गुँजा देनेवाले बैल अब मिचरा-मिचराकर जीभ से सानी उठाने लगे। कवलापति देखता और उसका कलेजा ऐंठकर रह जाता। जो-कुछ था, झोंकने लगा। लेकिन गाड़ी की ऐसी जोड़ी का गुज़र कहीं मामूली खेती-बाड़ी से हुआ है? जब कुछ न रहा, तो अपना और बाल-बच्चों के पेट काटने लगा। लेकिन सिकम-भर सबका पेट भरने-वाले उन शेर-बैलों के पेट क्या उन पेट-कटे दानों के सँभार के थे?

और कवलापति का दिल टूट गया। उसका खयाल था कि बहुत दिनों तक ज़माना वैसा ही न रहेगा। लेकिन ज़माना दिन-दिन जब और बिगड़ता गया, तो वह क्या करता? अपना मांस-ख़ून खिला-पिलाकर वह अचानक ही बूढ़ा हो गया। दुख और चिन्ता ने उसकी मूँछों को सफ़ेद करके झुका दिया। यह रोज़-रोज़ हरकते जाते हुए बैलों को देखता और मन-ही-मन पछाड़ खाकर आँखें मूँद लेता। और एक दिन जब उसने बैलों की उदास आँखों के नीचे काली-मोटी लकीरें देखीं, तो एक बच्चे की तरह वह रो पड़ा। लोगों की आँखें बचाकर अँगोछे से वह उन लकीरों को पोंछने लगा। जब साफ़ न हुईं, तो अँगोछा पानी में भिंगोकर पोंछा। फिर भी साफ़ न हुईं, तो पहली बार उसकी आँखों के अपने आँसुओं ने ही बताया कि कितना ख़ून जलकर एक बूँद आँसू बनता है! ख़ून का दाग़ धोया-पोंछा जा सकता है, लेकिन कहीं आँसू के दाग़ भी मिटाये जा सके हैं? आँसुओं को पोंछ देने से कहीं आँसू रुकता है? और कवलापति अब पोंछने के सिवा

कर ही क्या सकता था ?

इक्का-दुक्का जो काम मिलता, अब कवलापति उससे भी मन हटाने लगा। उन बैलों के काँधे पर जुआठ रखते उसका कलेजा फटता। उसे अपने पहले दिन याद आते और वह एक भावुक की तरह रो-रो पड़ता।

यह मार जैसे कम थी कि अगले साल एक और मार आ पड़ी। सावन-भादो ऐसा बरसा, मानो आसमान में दरारें पड़ गयी हों। बोयी भदई सड़-गलकर रह गयी। मज़दूर-किसानों और उनके चौपायों का गुज़र भदई से होता है और बड़े आदमियों और उनके चौपायों का गुज़र रब्बी से। भदई का जाना ग़रीबों और उनके चौपायों की मौत है।

चारों ओर मौत मँडराने लगी। ग़रीबों की आँखें सूखकर वीरान हो गयीं। अकाल गीधों की तरह सिर पर मँडराने लगा। जानवरों को कौन पूछे, ग़रीब पटापट मरने लगे। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गयी। लोग गाँव छोड़कर शहर की ओर भागने लगे। जिसका जहाँ सींग समाता, भागता नज़र आता। एक मुट्ठी जहाँ अन्न न मिले, वहाँ कोई कैसे रहे ? सुना जाता कि सरकार मोटा ग़ल्ला भेज रही है, लेकिन जाने कहाँ वह ग़ल्ला रास्ते में ही उड़ जाता। कवलापति ने सोचा था कि भदई अच्छी हो गयी, तो तीन महीने तो अच्छी तरह कट जायेंगे, आगे का भगवान मालिक है। लेकिन अब ऐसी आ पड़ी। पहली बार जब हीरा-मोती चुगनेवाले अपने बैलों के सामने उसने पिछले साल का बचा-खुचा पुआल फेंका, तो वह वहाँ यह देखने के लिए खड़ा न रह सका कि बैल उन पर मुँह मारते हैं कि नहीं।

और तभी एक रात कलकत्ता से मुरली आया। उसकी अकेली बहू ने उसे यहाँ का हाल-चाल लिखवाकर लिवा जाने के लिए बुलाया था। मुरली ने कवलापति के सामने सिर पटककर मिन्नत की थी, "चौधरी

चाचा, टीसन तक पहुँचा दो, नहीं तो मेरी बेकत तो यहाँ मर ही जायगी। वहाँ कुछ नहीं तो आधा पेट रासन तो मिल जाता है।"

और कवलापति ने सिर झुकाये ही कहा था, "कितनी गाड़ियाँ पड़ी हैं। चला जा किसी को लेके। मैंने तो जमाने से गाड़ी हाँकना छोड़ दिया है।"

"नहीं, चौधरी चाचा, दूसरे पर विसवास नहीं होता। जमाना बहुत खराब आ गया है। चारों ओर लूट-पाट मच रही है। कुछ ले-देके चलना खतरा बन गया है। उसकी देह पर कुछ गहने हैं। कहीं कुछ हो गया, तो मैं तो मर जाऊँगा। नहीं, चौधरी चाचा, ना न करो। तुम्हारी भी तो वह पतोह ही की तरह है। पहुँचा दो, चाचा, समझेंगे, तुमने हमें नयी जिनगी दे दी। तुम्हारे पैर पकड़ता हूँ, चाचा!" कवलापति क्या करता? बेमुरौवती का नाम उसने जाना ही कब था?

बैठकी और कमज़ोरी के कारण बैलों के पाँव न उठते। कभी की आदत न होने से कलवापति कैसे हाँकता या उनपर छिकुन उठाता? धीमे-धीमे दोपहर तक जब छः ही मील चल पाये, तो मुरली परेशान हो उठा और लगा कवलापति को खोदने। कवलापति पहले चुप रहा। फिर समझाया कि गाड़ी छूटेगी नहीं, आज तक कभी नहीं छूटी। फिर भी बैलों की वही मरियल चाल देखकर मुरली को कैसे धीरज रहता? वह और भी खोदने लगा। और फिर तो कवलापति को जाने क्या हो गया कि उसने कई छिकुनें तोड़ दीं।

बैलों की पीठ पर गोहिये (मार के निशान) देखकर, कवलापति समझ न पा रहा था कि समचमुच उसे आज क्या हो गया था, जिन बैलों को उसने कभी ठोकारी न मारी, उनपर उसने आज़ छिकुनें कैसे तोड़ दीं? कवलापति का दिल रो रहा था। और बैलों को भी जैसे आर आ गयी थी, उनकी आँखों के नीचे की लकीरें और भी गाढ़ी, और भी मोटी होती जा रही थीं। वे उन्हीं आँखों से एकटक कवलापति

को ऐसे देखे जा रहे थे, जैसे पहचानने की कोशिश कर रहे हों कि क्या यह वही कवलापति है ? और कवलापति उनसे आँखें न मिला पा रहा था। वह मन-ही-मन कटा जा रहा था, जैसे उसका सारा प्यार-दुलार आज खत्म हो गया था, जैसे सचमुच आज वह अपनी निगाहों में ही बदल गया हो।

शाम झुक आयी। पच्छिम में वीरान आकाश के माथे पर चाँद का टुकड़ा ऐसा दिखायी दे रहा था, जैसे नयी विधवा के माथे पर पुँछे हूए लाल सिन्दूर के टीके का निशान हो। हवा बन्द थी। बस्ती शान्त। कहीं कोई शोर न था। जैसे सब वातावरण ही सहमा-सहमा हो। कवलापति बहुत दिनों के बाद टीसन पर आया था। उसे आश्चर्य हुआ कि शाम को उस बस्ती की सड़क पर जगमग-जगमग करनेवाली वे बत्तियाँ कहाँ गयीं, वे दुकानें और मुसाफिरों का वह शोर कहाँ गया, जगह-जगह सड़क-किनारे लिट्टी सेंकने के तैयार होते अहरों से चिमनी की तरह उठते हुए धुओं के भभके कहाँ गये ? यह ऐसी विरानी क्यों, जैसे सरेशाम ही सोता पड़ गया हो ?

फिर भी कवलापति को मालूम था कि उसकी मोदियाइन की दुकान कहाँ है। उस अँधेरे में भी वहाँ पहुँचने में उसे कोई दिक़्क़त न हुई। मोदियाइन के भी घर का दरवाज़ा बन्द था। कवलापति को शक हुआ कि कहीं मोदियाइन ने भी तो दुकान नहीं उठा दी। उसने आवाज़ दी।

कवलापति की आवाज़ कौन नहीं पहचानता ? मोदियाइन हाथ में हुक्की लिये दरवाज़ा खोलकर बोली, "बड़े दिन पर लौटे, चौधरी ?"

"हाँ, का करूँ ? कुछ काम ही न रहा।" कवलापति ने कहा।

"गाड़ी लेकर आये हो ?" मोदियाइन ने हुक्की में एक बार गुड़-सा करके कहा।

"हाँ, कुछ सातू-भूसी के लिए चला आया।" कवलापति बोला।

"सातू-भूसी का तो नाम न लो, चौधरी। अनाज कहाँ मिलता है कि कूटू-पीसूँ? वह तो महीनों हो गये...."

"ऐसा न कहो, मोदियाइन, मेरा काम तो किसी तरह चला ही दो। बैल बहुत भूखे हैं। पास में एक तिनका भूसा भी नहीं।" कवलापति गिड़गिड़ाया।

"का बताऊँ तुमसे, चौधरी, पास होता, तो चाहे दुनिया को इनकार कर देती, तुमसे ना कहते कैसे बनता? अपने खाने के लिए सेर-आध सेर है, चाहो तो ले लो।" कहकर मोदियाइन ने चिलम पर एक फूँक मारी। राख के कण कवलापति के मुँह पर उड़ आये।

वह बोला, "सेर-आध सेर से मेरे बैलों का होगा, मोदियाइन! पैसा चाहे जितना ले लो...."

"हाथी पालने का यह जमाना नहीं, चौधरी। रहता, तो का तुम्हीं से मोल-मोलाई करती?" कहकर मोदियाइन मुस्करायी। फिर बोली, "थोड़ी भूसी भी होगी। मिला-जुलाकर किसी तरह काम चला लो। का करोगे? जब आदमियों को ही दाना नहीं जुड़ता, तो जानवरों को कहाँ से मिलेगा?........ये बैल तो वही हैं न? क्यों नहीं इन्हें बेंचकर कोई छोटा-मोटा ले लेते? इनके पेट का इस जमाने में कहाँ से जुटाओगे?"

"दुर्दिन में अपनों से गला नहीं छुड़ाया जाता, मोदियाइन! मेरा खूँटा छोड़कर ये एक पल भी जिन्दा न रहेंगे। लाओ, जो हो, दे दो। इन्हें पिला-खिला दूँ। नाँद तो तुम्हारी साफ है न?

"हाँ, यह बाल्टी-डोर पड़ी है। तुम पानी भरो।"

नाँद साफ करके कवलापति ने पानी भरा। चार सेर सत्तू का पतला घोल एक मिनट में बैल सुड़क गये। फिर पानी में दस सेर भूसी चलायी। पाँच मिनट में बैल मुँह ताकने लगे।

कवलापति की समझ में न आ रहा था कि वह इन बैलों को कैसे

समझाये ? वह दुखी ही पाँच रुपये मोदियाइन का हिसाब चुकाकर वापस लौटा। आज उसने सोचा था कि टीसन पर भर-पेट बैलों को खिलायेगा, चाहे सब रुपये क्यों न खर्च हो जायँ। लेकिन यह ज़माने की खूबी ही तो थी, कि खर्च करके भी कवलापति अपने बैलों का पेट न भर सका।

लौटा, तो टीसन पर एक शोर सुनायी पड़ा। गाड़ी आ गयी थी। उस सन्नाटे में वह शोर ऐसा लगा, जैसे मसान पर कोई मुर्दा जलने को आ गया हो।

कवलापति बैलों की जोती जुआठ में बाँध ही रहा था कि सुना, "अरे, चौधरी भाई हैं ?"

कवलापति ने आवाज़ की ओर सिर उठाकर कहा, "कौन ?"

"मैं लछिमी लाल। पहचाना नहीं ? बड़े मौके से भेंट हो गयी। सवारी लेकर आये थे ?"

"हाँ।"

"लौटना है न ?"

"हाँ।"

"एक काम हमारा भी है। करते चलो। लौटती भी कुछ मिल जायगा।"

"का है ?"

"अरे, दस बोरियाँ हैं।"

"मैंने आजकल लादना छोड़ दिया है, लाला।"

"अरे भाई, सो तो मालूम है। लेकिन जब आ ही गये हो, तो लेते चलो।"

"बहुत गाड़ियाँ मिलेंगी। तुम्हारी अपनी भी तो गाड़ी है।"

"अपनी गाड़ी मँगा न सका। चार दिन का आया हूँ। आज सौदा बना। दूसरे की गाड़ी ले नहीं सकता। माल जरा जोखिम का

है, चौधरी भाई, तुम से का छिपाना। तुम पर जितना बिसवास है, उतना अपनी गाड़ी पर भी नहीं। तुम को माल देकर हमें कोई चिन्ता नहीं रह जाती। संजोग से तुम से भेंट हो गयी, नहीं तो मैं तो बहुत परेसान था कि कैसे का होगा। ले लो, चौधरी, तुम्हें खुस कर दूँगा।"

"चौधरी को लोभ दिला रहे हो? कभी........"

"अरे चौधरी, यह तो बात-की-बात थी। नहीं तो का तुम्हें हम नहीं जानते? कहो, तो दाढ़ी पकड़ लूँ। अब सौदा कर लिया है, तो निबार लो, चौधरी भाई।"

"जियादे नहीं लादूँगा। बैल........"

"नहीं, नहीं, चौधरी भाई, जियादे कहाँ मिलता है। बस, दस बोरियाँ हैं। खा-पीकर खोल दोगे, तो रातों-रात........तुम्हारे रहते, चौधरी भाई, हमें कोई डर नहीं रहता। यह पर्दा इसी तरह रहने देना। कहीं कोई बात आ पड़े, तो कह देना, सवारी है। तुम्हारी बात पर कोई अबिसवास नहीं करता, चौधरी भाई। का बताऊँ, तुमने गाड़ी चलाना का छोड़ दिया........"

रात गाढ़ी हुई और गाड़ी चल पड़ी। खड़र-पड़र, खचर-पचर। रह-रहकर रात का सन्नाटा चिहुक-चिहुक उठता। पर्दे में लाला को हौल हो रहा था। वह होंठों में ही बुदबुदा रहा था, 'राम-राम........' उसका अनुभव था कि यह ऐसा मन्त्र है, जो बड़ी-बड़ी विपत्तियों को भी पार करा देता है। कहने को चाहे जो हो, आज चौधरी पर भी उसे विश्वास न था। ज़माना ही ऐसा नहीं कि किसी पर विश्वास किया जाय।

इस लाला ने लड़ाई में तो अपनी कौड़ी सीधी की ही थी, साथ ही सन् बयालीस में एक ऐसी घटना घट गयी थी कि इसकी सभी कौड़ियाँ सीधी हो गयी थीं। इसकी दुकान के पास एक कांग्रेसी

की दुकान थी। गोरी फ़ौज ने कांग्रेसी की दुकान में आग लगायी, तो पड़ोस की लाला की भी दुकान जल उठी। लाला हाय-तोबा कर उठा ऊपर से, लेकिन मन-ही-मन खुश हुआ। उसके पास अवार-जवार के ग़रीबों के हज़ारों रुपये के चाँदी के गहने गिरवीं रखे हुए थे। उसके जवान बेटे ने शोर मचा दिया कि वे गहने दुकान में ही थे। फ़ौज लूट ले गयी। धाँधली का ज़माना था। कोई क्या कहता? ग़रीब रो-पीटकर रह गये। लाला दूसरे का खून अँगुली में लगाकर शहीद बन गया। ज़माना पलटा, तो उसका लड़का कांग्रेसी बन गया। सरकार ने जली दुकान का मुआवज़ा दिया बीस हज़ार। लाला ने तो एक लाख की अर्ज़ी दी थी। उसका कहना था कि सरकार ने बड़ा अन्याय किया, लेकिन किया क्या जाय। कांग्रेसी लड़के ने कोशिश कर सिमेंट, नमक, कपड़े-वपड़े का ओटा-कोटा, परमिट-सरमिट बटोर लिया। और देखते-ही-देखते लाला कस्बे का बड़ा आदमी हो गया। फिर भी उसके खादी के कपड़ों में सब मसालों की मिली-जुली गन्ध और रंग चौबीसों घंटे बसे रहते। कोई भी उसे देखकर नहीं समझ सकता कि लाला माल-धनी है। सब काम वह और उसका लड़का ही सँभाल लेते। नौकरों का क्या ठिकाना?

दस बोरियों में गेहूँ भरा था। कस्बे में पहुँचा नहीं कि गेहूँ सोना बना। जिस भाव चाहें, बेंच लेंगे। एक छँटाक भी कहीं देखने को आज-कल कहाँ मिल रहा है? लेकिन लाला के दिल में दहशत समायी थी कि राह में कुछ हो न जाय। उसे पुलिस का भय न था। पुलिस को तो वह बराबर चटाता रहता था। आज-कल कोई भी रोज़गार पुलिस को खुश किये बिना कैसे चल सकता है? और फिर लाला ठहरा परमिट-कोटेवाला, जिसके हर दरवाज़े पर हाथ फैले रहते हैं। दो, तो लो। लाला इस पेशे में माहिर हो गया था। उसे डर था राह-घाट के लोगों का। यों भी रास्ते में पकड़-धकड़कर कम्बख्त जेबें टटोलने लगते हैं।

कुछ ठिकाना है लोगों का ? फिर इस राह में तो लोग बड़े सरकश हो गये हैं। दिन-दहाड़े लूट लेते हैं। ऊपर से कहते हैं कि, 'हम गैर-कानूनी काम करते हैं, तो तुम किस कानून के मातहत गल्ला चुराये लिये जा रहे हो ?' यह-सब कम्युनिस्टों की कारस्तानी है। कम्बख़्त इधर बढ़ गये मालूम होते हैं। और लाला पुकार लगाता, "चौधरी भाई, जरा फरहरे बढ़ाये चलो। सो तो नहीं रहे ?"

कवलापति को नींद नहीं आ रही थी। पहले रात को वह सो जाया करता था और बैल अपनी राह पर चलते रहते थे। लेकिन आज उसे नींद नहीं आ रही थी। आज उसके मन में जाने कैसी-कैसी बातें उठ रही थीं।

गीले खेतों में टह-टह चाँदनी फैली थी। उस चाँदनी से कवलापति की आँखें जल रही थीं। उसे लग रहा था, कि यह चाँदनी नहीं है, दलदल पर सफ़ेद-सफ़ेद नाग लहरा रहे हैं और किसानों को डस लेना चाहते हैं। कुआर बीतने पर आया। खेत अब तक सूखे नहीं कि हल चले और रब्बी की तैयारी हो। भदई तो मारी ही गयी, रब्बी की भी कोई उम्मीद नहीं। यह मार-पर-मार कैसे बरदाश्त होगी ? अकाल पड़ गया है। एक मुट्ठी दाना कहीं नज़र नहीं आता। कस्बे का जो बाज़ार गल्ले से भरा रहता था, आज उजड़ गया है। पता नहीं, सब गल्ला कहाँ उड़ गया। और सहसा कवलापति का ख़याल लाला की गेहुँओं की बोरियों की ओर चला गया। और उसने सोचा कि शायद इसी तरह सब गल्ला लालाओं के हाथ चोर-बाजार में पहुँच गया है। लाला कस्बे में चोरी-छुके यह गेहूँ बेचेगा। जिस भाव चाहेगा, बेचेगा। जिसके पास पैसा होगा, खरीदेगा। और जिसके पास पैसा नहीं, वह ?

"खबरदार ! गाड़ी रोक दो !"

कवलापति के हाथ खिंच गये। उसने आँखें झपकाकर देखा, सामने कई लठबन्द काले-काले देव-से खड़े थे। लाला की साँस उलटी

चलने लगी।

एक लट्ठबन्द ने आगे बढ़कर पूछा, "सवारी है का?"

कवलापति चुप, जैसे बकार ही न निकल रही हो। लाला ने काँपते हाथ को बाहर निकालकर कवलापति की पीठ में चुटकी काटी। मतलब था कि कह दो, सवारी है। लेकिन कवलापति चुप। आज यह कवलापति को क्या हो गया है? दस्तूर के ख़िलाफ़ आज उसने अपने लाड़ले बैलों को छिकुनें मारी थीं। दस्तूर के ख़िलाफ़ आज महाजन का माल लादे वह चुप है और डाकू सामने खड़े हैं। कवलापति को आज हो क्या गया है?

एक दूसरा लट्ठबन्द सामने बढ़ा और मूरत की तरह चुप बैठे कवलापति को ग़ौर से देखकर उसने कहा, "अरे भाई, यह तो चौधरी हैं!"

चौधरी! और सब लट्ठबन्दों के होंठ हिल गये, चौधरी!

"अरे, चौधरी दादा, बोलते क्यों नहीं? हमें क्या मालूम था कि यह तुम्हारी गाड़ी है। जाओ, जाओ, बढ़ाओ गाड़ी।" वही लट्ठबन्द बोला।

लाला ने खुश होकर फिर कवलापति की पीठ में चिकोटी काटी। मतलब था, बढ़ाओ, जल्दी गाड़ी बढ़ाओ!

लेकिन गाड़ी खड़ी है। यह क्या बात है? लट्ठबन्दों में फुसफुसाहट हुई। क्या बात है? और कवलापति बुत, जैसे साँस भी नहीं ले रहा हो।

"जरा देख तो चढ़कर। दाल में कुछ काला मालूम होता है। नहीं तो चौधरी का इस तरह चुप रहते? है कोई बात!" उसी लट्ठबन्द ने कहा।

एक लपककर गाड़ी पर चढ़ गया। लाला के प्राण गले में आ छटपटाने लगे। और वह आदमी चीखा, "अरे, यह तो अनाज की

बोरियाँ हैं !"

लाला कवलापति के पैर पर गिर पड़ा, "बचा लो, चौधरी भाई, बचा लो ! तुम बोल दो, तो ये हट जायेंगे ! चौधरी भाई !"

कवलापति मूरत-का-मूरत !

बोरियाँ नीचे आने लगीं। लठबन्दों ने पुकार-पुकारकर पास की अपनी बस्ती के सब लोगों को जमा कर लिया। लाला चीखता रहा और उसकी वहशी आँखों के सामने ही उसका सोना मुट्ठी-मुट्ठी उड़ गया और कवलापति बुत-का-बुत !

*

मुँह-अँधेरे ही गाँव में हंगामा मच गया। पुलिस कवलापति को पकड़ ले गयी।

पता लगाने पर मालूम हुआ कि कस्बे के लाला लछिमी लाल ने थाने में रपट लिखायी है कि रात टीसन से वह दस हज़ार रुपया लेकर कवलापति की बैलगाड़ी पर आ रहा था। जब गाड़ी हल्दी के पुल पर पहुँची, तो कवलापति ने अपने डाकू साथियों को बुलाकर उसे लुटवा लिया। कवलापति डाकुओं का सरदार मालूम होता है।

लोगों ने सुना, तो हैरान हो-होकर समझने की कोशिश करने लगे—यह कैसा डाकुओं का सरदार है, जिसने मुँह दिखाकर रात में डाका मारा और सुबह में पकड़ जाने के लिए अपने घर में आ सो गया ? उनकी इस हैरानी का जवाब कौन देता ? कवलापति हवालात में था और खूँटे पर बँधे हुए बैल मूक थे।

◆

गत्ती भगत

उस दिन जिधर सुनो, गाँव में छोटे-बड़े, सभी के मुँह से अफ़सोस और ताज्जुब के साथ एक ही बात सुनायी दे रही थी, 'गत्ती भगत की कण्ठी टूट गयी !'

कण्ठी पहनने और तोड़ने, दोनों की शोहरत गाँवों में एक ही तरह फैलती है। हाँ, पहनने की बात सुनकर जहाँ लोगों को खुशी होती है, वहाँ तोड़ने की बात सुनकर अफ़सोस। लेकिन ताज्जुब का भाव दोनों में एक-सा ही रहता है। कोई लुच्चा-लफंगा, बदमाश-शोहदा, या मांस-मछली खाने और दारू पीनेवाला अचानक एक दिन गले में तुलसी की कण्ठी पहनकर भलमानस और भगत बन जाय, तो किसे खुशी और ताज्जुब न हो ? और वही भलमानस और भगत दो-चार महीने या साल भगत की ज़िन्दगी बिताकर, अपनी सचाई, भलमनसाहत, पवित्रता और पूजा-पाठ की धाक लोगों के मन पर जमाकर एक दिन अचानक कण्ठी तोड़कर अपनी पुरानी ज़िन्दगी के तौर-तरीकों को वापस लौट जाय, तो किसे अफ़सोस और ताज्जुब न हो ?

और गत्ती भगत के मामले में तो अफ़सोस और ताज्जुब का और

भी बड़ा कारण था। गत्ती कभी भी चोर या लफंगा न रहा था और न कभी उसने दारू को ही मुँह लगाया था। उसकी ज़िन्दगी सभी साधारण किसानों की तरह थी। हाँ, वह मांस-मछली ज़रूर खाता था, लेकिन यह तो लोगों के देखने में कोई वैसा अपराध न था। कुछ ब्राह्मणों और आर्यसमाजियों को छोड़कर गाँवों में कौन मांस-मछली नहीं खाता? फिर उसने कण्ठी भी अपने मन से, अपने बुरे आचरणों, असामाजिक कार्यों को छोड़ने की घोषणा करके नहीं पहनी थी। उसकी कण्ठी की तो एक अलग ही दिलचस्प कहानी थी।

कहा जाता है कि एक रात सोता पड़ने पर अचानक एक साधु ने गत्ती का दरवाज़ा खटखटाया। गत्ती ने दरवाज़ा खोलकर, सामने साधु को खड़ा देखकर नमन किया।

साधु ने कहा, "बच्चा, ठाकुरजी आज रात तेरे दरवाज़े पर ही काटना चाहते हैं। देगा आसरा?"

गत्ती ने हाथ माथे से लगा, सिर झुकाकर कहा, 'मेरा बड़ा भाग, बाबा! खुसी से मिरगछाला डालें।" और उसने दालान के कोने को अँगोछे से झाड़-पोंछ दिया।

साधु ने मृगछाला डाल चिमटा गाड़ दिया। फिर पाँव पसारकर लेटने को हुआ, तो गत्ती बोला, "बाबा, परसाद पा चुके हैं?'

साधु मुस्कराया। फिर बोला, "बड़ी दूर से ठाकुरजी आ रहे हैं। कहीं....कहीं टिकने का इरादा नहीं था। इतनी रात गये ठाकुरजी तुझे क्या कष्ट दें?"

"इसमें कस्ट की का बात, बाबा? जो साग-सातू...." बात मुँह में ही लिये गत्ती अन्दर जाने लगा, तो साधु बोला, "ठाकुरजी कुछ बनायेंगे नहीं। बहुत थक गये हैं। चना-चबेना कुछ हो........"

गत्ती ने ठिठककर, चिन्तित होकर कुछ सोचा। फिर अन्दर जाकर मेहरी से पूछा, तो मालूम हुआ कि आज ही का भूना सत्तू के लिए

मक्का रखा है। बेर हो जाने से वह पीस न सकी थी।

एक साफ़ डाली में भूना मक्का और एक पीड़िया बढ़िया गुड़ और चमचमाते पीतल के लोटे में जल लाकर गत्ती ने साधु के सामने रख दिया।

साधु खा-पीकर तृप्त हो गया। सोंधा-सोंधा मक्का उसे खूब भाया। उसकी सुगन्ध तो जैसे अब भी दालान में मँडरा रही थी।

आराम से लेटकर, साधु ने हाथों की अँगुलियाँ उलझाये, सिर झुकाये खड़े गत्ती की ओर देखकर कहा, "बच्चा, ठाकुरजी की आत्मा तृप्त हो गयी। ठाकुरजी तुझसे बहुत प्रसन्न हुए। तू ठाकुरजी से कुछ माँग ले।'

संकोच में गत्ती के होंठ ज़रा मुस्कराये, बोल न फूटा।

साधु ही बोला, "अच्छा देख, ठाकुरजी तुझे एक दवा बता देते हैं। इससे तुझे बड़ा यश मिलेगा। तेरा नाम दूर-दूर तक फैल जायगा।"

गत्ती मुँह बाये बैठ गया। साधु बोलता गया, "उकवत का रोग होता है न ? इसकी कोई दवा दुनिया में नहीं है। बड़े-बड़े डाक्टर-हकीम भी इस रोग के सामने हार मान जाते हैं। तुझे उसी की दवा ठाकुरजी बताते हैं। ध्यान से सुन !"

दो क्षण चुप रहकर साधु बोला, "नाई को बुलाकर उकवत के रोगी के चाँद पर थोड़ा बाल छिलवाकर, उस्तरे की नोक से दस-पाँच टोप मारने को कहना। ऊपर जब कुछ खून आ जाय, तो उसपर तू अपने दायें हाथ के अँगूठे से यह दवा बैठा देना।" कहकर अपने बटुए से निकालकर एक पुड़िया सफ़ूफ़ साधु ने गत्ती की ओर बढ़ा दिया।

गत्ती ने पुड़िया लेकर, माथे से लगायी और पलकें झपकाकर साधु की ओर देखने लगा।

साधु ने आगे कहा, "दवा लगाने के बाद तू रोगी को हिदायत

देना कि इक्कीस दिन तक वह सिर पर पानी न डाले, कन्धे से ही नहाये, उकवत के घाव की जगह को रोज ठण्डे पानी से धोये, उस पर कोई दवा न लगाये। इक्कीस दिन के बाद घाव सूख जाने पर एक ब्राह्मण या साधु को भोजन करा दे। हाँ, तू उससे कुछ न लेगा, न उसे कुछ देगा। अपने यहाँ उसे न ठहरायगा, न कुछ बैठने को देगा और न एक लोटा पानी पीने को। नाई को वह जो चाहे दे। एक बात का और ध्यान रखना। इतवार और मंगल को ही तू यह दवा लगाना। और किसी दिन नहीं। समझा न?

"जी, बाबा," गत्ती ने ताज्जुब और खुशी से आँखें झपकाकर कहा, "बाकी जब यह पुड़िया खतम हो जाय, तो?"

साधु ज़ोर से हँसकर बोला, "सब्र रख, बच्चा! ठाकुरजी तुझे इसका भेद भी बता देते हैं। बहुत मामूली चीज है। चिलम तू पीता है न? उसी की सात हिस्सा खोंठी और एक हिस्सा नमक मिलाकर, पीसकर पुड़िया में रख लेना। एक बात का खयाल रखना। मांस, मछली, ताड़ी-दारू न खाना-पीना, झूठ न बोलना, अपना चाल-चलन ठीक रखना। यह कण्ठी अपने गले में डाल ले।" कहकर साधु ने उसे एक कण्ठी अपने बटुए से निकालकर दी। और फिर बोला, "और देख, जब तू मरने लगना, तो यह भेद अपनी औरत या बेटे-बेटी में से किसी एक को बता देना। तेरे घर में यह सदा चलता रहेगा। अच्छा, अब तू जा, ठाकुरजी आराम करेंगे।"

दूसरे दिन सुबह, जब गत्ती उठा, तो साधु जा चुका था। गत्ती के गले में कण्ठी देखकर, लोगों ने पूछा-ताँछा, तो गत्ती ने रात की कथा सब को खुश-खुश सुना दी।

मुँह-मुँह से बात फैली और देश के कोने-कोने में छा गयी। कोई ऐसा इतवार और मङ्गल नहीं, जब गत्ती के दरवाज़े पर उकवत के रोगियों की भीड़ न होती। दूर-दूर से, कलकत्ता, बम्बई और दिल्ली

तक से उकवत के अमीर-ग़रीब रोगी उस मामूली किसान, गत्ती के दर-वाज़े दवा लगवाने आने लगे। टीसन से पन्द्रह मील दूर, अनजाना छोटा-सा गाँव, न कोई सर न सवारी, फिर भी पूछते-आँछते पहुँच जाते। लड़के, जवान, बूढ़े, पुराने रोगी और नये, जिसे जहाँ से, जैसे गत्ती की ख़बर मिलती, भागा-भागा आ पहुँचता। और कमाल यह कि सब अच्छे हो जाते।

और गत्ती कोइरी अब गत्ती भगत बन गया। उसके भोले-भाले, धर्म-भीरु दिल और दिमाग पर साधु की बातों और दवा के कमाल का कुछ ऐसा असर पड़ा कि उसकी ज़िन्दगी ही बदल गयी। वह बड़े नियम से स्नान-पूजा करने लगा, मांस-मछली छोड़ दिया और ऐसा पवित्र आचरण करने लगा, कि लोगों को आश्चर्य होता। सूरज पूरब की बजाय पच्छिम में उग जाय, यह सम्भव, लेकिन गत्ती भगत के मुँह से कोई झूठ बात निकल जाय, उससे कभी कोई अन्याय हो जाय, किसी मौक़े पर वह क्रोध-मोह-लोभ दरशाये, यह असम्भव !

कई बार ऐसा हुआ कि कोई सेठ-साहूकार या कोई ज़मींदार-ताल्लुक़ेदार या कोई हाकिम-अफ़सर दवा लगवाने आया और ख़ुश होकर या अपना बड़प्पन दिखाने के लिए या इनाम के बतौर उस लँगोटी बाँधे किसान को कुछ देना चाहा या उससे कुछ माँगने को कहा, तो गत्ती भगत ने उसे दुत्कार दिया, जैसे कोई क्या कुत्ते को दुतकारेगा।

और गत्ती भगत का मान गाँव में सबसे ऊँचा हो गया। क्या छोटा, क्या बड़ा, सब उसकी इज़्ज़त करते, सब उसकी बात की क़द्र करते। कहीं कोई झगड़ा हो, पर-पंचायत हो, गत्ती भगत बुलाया जाता, और जो भी इन्साफ़ वह कर देता, सब सिर झुकाकर मान लेते। गत्ती भगत दूर-दूर तक अपनी ईमानदारी के लिए मशहूर हो गया।

देखते-देखते पूरे पचीस साल गुज़र गये। जवान गत्ती भगत बूढ़ा हो गया, लेकिन कोई बात है कि कभी उसका पन टूटा हो, कभी उसके ईमान में कोई फ़र्क़ पड़ा हो।

और उसी गत्ती भगत की उस दिन कण्ठी टूट गयी, यह क्या कोई मामूली अफ़सोस और ताज्जुब की बात थी? जिसने सुना ताज्जुब से जीभ दबायी, जिसे मालूम हुआ, च-च किया। लेकिन गत्ती भगत....

बात यों हुई।

उन्नीस सौ पचास का ज़माना था। ज़मींदार और किसानों के बीच गाँव में तनातनी चल रही थी। सुनने में आ रहा था कि जमींदारी जल्दी ही टूटनेवाली है, और जो ज़मीन जिसकी जोत में है, उस पर उसी का अधिकार हो जायगा। ज़मींदार की अपनी जोत में कोई ज़मीन न थी। उसके सारे खेत किसान सालों से सिकमी पर जोत रहे थे। जब ज़मींदार ने ज़मींदारी टूटने की अफ़वाह सुनी, तो उसने एक फ़ारम खोलने की घोषणा की और यह बात फैलायी कि जो यों न खेत छोड़ेगा, उसका खेत पुलीस-द्वारा बेदखल करके फ़ारम में मिला दिया जायगा। ऐसा कानून बना है कि फ़ारम के लिए सरकार सब सहूलियतें देगी और कानून के ज़ोर से जितनी ज़मीन की ज़रूरत फ़ारम को होगी, दिलायी जायगी। पहले हल्ले में उसने कुछ खेत निकलवा भी लिये। लेकिन जब किसानों को होश आया और उन्होंने देखा कि इस तरह तो सब-के-सब एक दिन बेदखल कर दिये जायेंगे, तो उन्होंने अपनी पंचायत की। जीवन-मरन का सवाल था, पुश्तों से जोत में चले आये खेतों का वास्ता था, निकल गये, तो किस सहारे ज़िन्दगी काटेंगे? बहुत कोशिश की गयी कि गत्ती भगत पंचायत में आये और किसानों को सही सलाह दे, लेकिन वह नहीं आया। कानून वह नहीं जानता, बिना समझे-बूझे वह कैसे कुछ कह सकता है। फिर भी किसानों की पंचायत हुई। खबर देकर रामाधार को बुलाया गया।

रामाधार उस जवार का किसानों का कम्युनिस्ट नेता था। उसकी गिरफ्तारी के लिए कई वारन्ट निकल चुके थे, लेकिन उसे गिरफ्तार कर लेना कोई ठट्ठा न था। किसान उसे वैसे ही छिपाये रहते, जैसे मुर्गी अपना अण्डा।

रामाधार के समझाने-बुझाने पर सब ने मिलकर तै किया कि चाहे जो हो, वे अपना खेत न छोड़ेंगे। सब मिलकर ज़मींदार का मुक़ाबिला करेंगे और बेदख़ल खेतों को उनके सिकमीदारों को वापस दिलायेंगे।

संघर्ष की दुन्दुभी बज गयी।

दूसरे दिन बेदख़ल खेतों पर किसान दख़ल करनेवाले थे। ज़मींदार को हवा लगी, तो वह ख़ुद दौड़ा-दौड़ा थाने गया। अगर किसानों ने उसके निकाले खेतों पर क़ब्ज़ा कर लिया, तो उनका साहस बढ़ जायगा। सब बना-बनाया खेल बिगड़ जायगा। शुरू ही में उनका मनसूबा न तोड़ दिया गया, तो फिर ख़ैर नहीं। दारोग़ा की मुट्ठियाँ गर्म हुईं। उस पर ज़मींदार ने यह भी बताया कि रामाधार को वहाँ आसानी से गिरफ्तार भी किया जा सकता है। वह ज़रूर कल वहाँ आयेगा, वही तो सब ख़ुराफ़ातों की जड़ है, वर्ना किसानों की क्या हिम्मत, जो उसके सामने सिर उठाते? रामाधार को गिरफ्तार करना दारोगा के लिए वैसा ही था, जैसे किसी बड़ी तरक्क़ी के लिए कोई डिपार्टमेन्टल परीक्षा पास करना।

किसानों को ज़मींदार के इस हथकण्डे का पता चला, तो रात को फिर पंचायत बुलायी गयी। रामाधार से पूछा गया कि अगर पुलिस मुदाख़लत करे, तो उन्हें क्या करना चाहिए? सवाल बहुत टेढ़ा था। सब की अलग-अलग राय थी। कोई कहता कि बेदख़ल खेतों को अभी न छेड़ना ही बेहतर है; कोई कहता हम पुलिस से भी भिड़ लेंगे; कोई कहता, ज़मींदार से समझौता कर लिया जाय; आदि-आदि। रामाधार की राय थी कि यह मसला सिर्फ़ इसी गाँव का नहीं है। जवार के सभी

गाँवों में ज़मींदार और पुलिस यही धाँधली कर रहे हैं। पुलिस का मुक़ाबिला करना अकेले एक गाँव के बूते की बात नहीं है। सब गाँवों के किसानों को मिलकर यह मोर्चा लेना चाहिए। तभी मसला हल हो सकता है। मसले को छोड़ने और दूर हटाने से सब किसान एक-एक कर पिट जायेंगे और एक दिन सब बेदख़ल कर दिये जायेंगे।

बात आसान न थी। बातचीत होते-होते बेर हो गयी। चारों ओर सोता पड़ गया। लेकिन किसी नतीजे पर पहुँचना अब भी मुश्किल दिखायी दे रहा था। जिनके खेत बेदख़ल हुए थे, वे चाहते थे कि कुछ ऐसा जल्द और ज़रूर किया जाय कि उनके खेत वापस मिल जायँ। वे जान देने के लिए भी तैयार थे।

तभी रामाधार के एक साथी ने दौड़े-दौड़े आकर बताया कि पुलिस आ गयी। अपने बचाव का जल्द इन्तज़ाम करो।

सब हड़बड़ में उठ खड़े हुए। अब?

गाँव में ठहरना ठीक नहीं। तलाशी हो सकती है। सब बाहर आये, तो बूटों की आवाज़ पास ही सुनायी पड़ी। सूचना देर से मिली थी। अब सोचने-समझने का वक्त कहाँ? सब को बिखर जाने को कहकर रामाधार अपने साथी के साथ आगे बढ़ा कि अँधेरे में सामने से भी बूटों की आवाज़ आयी। वे बग़ल की गली में मुड़े तो उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि चारों ओर से बूटों की आवाज़ आ रही है। रामाधार साथी को एक ओर जाने का इशारा कर, सामने घर की ओर बढ़ा, तो साथी ने फुसफुसाकर कहा, "उस घर में नहीं। वह गत्ती भगत का घर है। पूछने पर वह सच बता देगा।"

आवाज़ें नज़दीक आती जा रही थीं। कोई चारा न था। रामाधार ने 'कोई हर्ज नहीं' का संकेत किया और घर की ओर बढ़ गया।

दरवाज़ा खुला था। दालान में गत्ती पीढ़ी पर बैठा हुक्का गुड़-गुड़ा रहा था। रामाधार ने सामने जाकर कहा, "दादा, पुलिस पीछे

पड़ गयी है। जाने का किसी ओर रास्ता नहीं। आज रात....”

गत्ती भगत हड़बड़ाकर उठ खड़ा हुआ। एक क्षण कुछ सोचा और फिर रामाधार की बाँह पकड़कर बिना कुछ बोले, उसे अन्दर ढकेल दिया। और खुद पीढ़ी से उठ, बाहर सहन में आ, दरवाज़ा खुला छोड़, बैठकर हुक्का गुड़गुड़ाने लगा।

रात-भर पुलिस गाँव में हड़कम्प मचाये रही। सब ओर से नाकेबन्दी करके, सारी गलियाँ बूटों से रौंद दी गयीं। लेकिन फ़रार का कहीं पता न चला। तब ज़मींदार की राय से खानातलाशी हुई। कहीं-न-कहीं गाँव में ही रामाधार छिपा होगा। दौड़ बिल्कुल वक्त पर पहुँची थी। वह भागकर कैसे निकल सकता है।

सहमे हुए औरत-मर्द और बच्चे एक ओर खड़े हो जाते। पुलिस दो छन में तलाशी ले लेती। छोटे-छोटे, सीधे-सीधे घर और झोंपड़े। देखने-सुनने में वक्त ही कितना लगता? आगे-आगे ज़मींदार और दारोग़ा और पीछे-पीछे पुलिस के सिपाही।

गत्ती भगत बदस्तूर सहन में बैठा हुक्का गुड़गुड़ा रहा था, जैसे जो-कुछ गाँव में हो रहा था, उसे कुछ पता ही न हो। पुलिस का दल जब सहन में पहुँचा, तो वह हुक्का हाथ में लिये ही खड़ा हो गया। ज़मींदार और दारोग़ा को सलाम किया। ज़मींदार ने पूछा, “रामाधार कहीं तुम्हारे घर में तो नहीं घुसा?”

गत्ती भगत ने आँखें झपकाकर कहा, “इस घर में उसका का काम, सरकार? मैं तो साँझ से ही यहाँ सहन में बैठा हूँ। का करूँ, रात में नींद नहीं आती। अब चला-चली का बखत आ गया।” कह-कर उसने जम्हाई ली।

“हम तलाशी लेना चाहते हैं,” दारोग़ा ने कहा।

“ले लीजिए, सरकार,” गत्ती ने हुक्का दीवार से टिकाकर कहा, “दरवाजा तो खुला ही है।”

"नहीं, कोई ज़रूरत नहीं। बेकार वक्त खराब करना ठीक नहीं! यह गत्ती भगत है। कभी झूठ नहीं बोलता। आगे चलिए!" और ज़मींदार के पीछे-पीछे दल आगे बढ़ गया।

रामाधार तो बच गया, लेकिन गत्ती भगत की यह बात जब लोगों को मालूम हुई, तो सभी के मुँह से अफ़सोस और ताज्जुब के साथ बस एक ही बात निकली, 'गत्ती भगत की कण्ठी टूट गयी!'

लेकिन गत्ती भगत से जब कोई पूछता, तो वह कहता, "कण्ठी काहे को टूट गयी? गाय को कसाई के हाथ से बचाने के लिए झूठ बोलना का पाप है? अगर मैंने कोई पाप किया है, तो मेरे हाथ में जस नहीं रहेगा। आज से जो दवा मैं लगाऊँगा, उससे रोगी अच्छा नहीं होगा। मेरे जस-अजस की यही कसौटी है!"

और लोगों ने दूने ताज्जुब से देखा कि गत्ती भगत के हाथों का जस जैसा-का-तैसा बना रहा। उसकी दवा के कमाल में कोई फ़र्क़ नहीं आया।

लेकिन उस दिन से ज़मींदार और दारोग़ा की नज़रों में गत्ती भगत बदल गया। उनके यहाँ उसका नाम कम्युनिस्टों में लिख लिया गया।

रिश्तों का आधार

उसका नाम किशोर है। लेकिन किशोर नाम होने से ही ऐसा तो नहीं हो सकता कि वह जीवन-भर किशोर ही रहे। जैसा नाम वैसा गुण कहनेवाले चाहे जो कहें, पर किशोर की आयु अगर साठ की नहीं है, तो इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि पचास को पार किये भी उसे काफ़ी अरसा हो चुका है। और आज उसके द्वार पर शहनाई बज रही है, शहनाई बज रही है, तो आप सोचेंगे कि उसके लड़के या लड़की का व्याह होगा। पर नहीं, ऐसा नहीं है। ऐसा अगर होता, तो आपको यह कहानी पढ़ने को न मिलती।

किशोर तीन भाई थे, सुभग, सालिक और किशोर। गाँव के बड़े-बूढ़े आज भी जब गाँव के शरीफों (यानी धनियों) की चर्चा करते हैं, तो उनमें सुभग का नाम ज़रूर आता है। सचमुच गाँव में कभी इनका भी एक ज़माना था। बड़ी हवेली, देशी चीनी का कारखाना, जगह-ज़मीन, हज़ारों का बर-व्यवहार, इज्ज़त-आबरू और वह सब-कुछ इनके पास था, जो एक खान्दान को 'शरीफ़' कहलाने के लिए आवश्यक है। उस समय दोनों बड़े भाई काम-काज सँभाल रहे थे और किशोर

अभी छोटा होने के कारण गाँव के पास के कस्बे के मिडिल स्कूल में पढ़ रहा था। वह ज़माना ऐसा नहीं था कि किसी साधारण आदमी का लड़का मिडिल स्कूल में पढ़ने जाता। मुश्किल से गाँव में दो-तीन आदमी ही इतने धनी थे, जिनके लड़के पढ़ने जाते थे। उन्हीं में एक किशोर भी था। बड़े भाइयों का इरादा उसे खूब पढ़ाने का था, ताकि उनके धनी खान्दान में एक शिक्षा की जो कमी थी, वह भी पूरी हो जाय, और उनकी मान-प्रतिष्ठा पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह सोलहों कला के साथ चमक उठे।

पर अभी किशोर मिडिल में पढ़ ही रहा था कि एक दिन अचानक अपनी स्त्री और सात-आठ साल के इकलौते लड़के को छोड़ सुभग चल बसा। उसका मरना था कि पता नहीं, कैसे क्या हुआ, कि उसका ज़माना ही पलट गया। सब रोज़गार चौपट होकर रह गया। चारों ओर शोर मच गया कि सुभग के फ़र्म का दीवाला निकल गया। जिसको-जिसको उनसे पाना था, सब यह खबर सुनकर दरवाज़े पर आ धमके। उदास सालिक ने रो-धोकर उनसे बहुत-कुछ कहा-सुना, समझाया-बुझाया कि सब ठीक है। उन्हें किसी बात की चिन्ता न करनी चाहिए। वह जल्द ही सब की उधार-बाक़ी चुका देगा। पर पानेवालों को उसकी बात पर विश्वास न हुआ। समय की बात ही तो थी कि जिनके यहाँ से बराबर हज़ारों का बर-व्यवहार रहा, वही आज आँख दिखाकर उससे रुपया माँगने लगे, जैसे वह अब उनके बीच का न रहा, जैसे उसके ग़रीब हो जाने से ही अब उससे उनका कोई सम्बन्ध न रहा।

सालिक को स्वयं आश्चर्य था कि कैसे क्या हो गया। जो लोहे की सन्दूक़ रुपयों से भरी हुई थी, अचानक कैसे खाली हो गयी? बही में हज़ारों रुपयों का रोकड़-बाक़ी भी साफ़-साफ़ दिखायी देता था, पर सन्दूक़ से रोकड़ गायब! अन्दर-ही-अन्दर यह बात सोच वह परेशान

हो रहा था, पर ऊपर से वह पानेवालों को हर तरह सान्त्वना देने का प्रयत्न कर रहा था।

आखिर महाजन ज़िद पर आ गये और उस समय इसी बात पर सन्तोष कर लेने को वे तैयार हो गये कि अगर सालिक उन्हें उनके पावने का आधा-आधा रुपया भी तत्काल दे दे, तो वे चले जायँगे।

पर सालिक कुछ भी देता, तो कहाँ से? वह बेहद परेशान हो कई बार बाहर से अन्दर गया और अन्दर से बाहर आया। बाहर महाजनों की तरेरती आँखें और अन्दर भाभी का रोना-धोना! अजीब परेशानी थी उसकी। क्या करे, कहाँ चला जाय?

लोगों का खयाल था कि व्यक्ति-व्यक्ति की बात होती है। किसी किसी का व्यक्तित्व ही ऐसा होता है कि जब तक वह रहता है, सब-कुछ भरा रहता है, और जैसे ही वह चल बसता है, सब-कुछ खाली हो जाता है। पर सालिक का खयाल ऐसा नहीं था। उसे शक था कि कहीं भैया मरते समय सब-कुछ भाभी को तो नहीं सौंप गये। यही सोच-सोचकर वह बार-बार घर के अन्दर जाता था कि भाभी से पूछे और महाजनों के तक़ाज़े की बात कह उनसे रुपये माँगे। भाभी को रोते-धोते देख उन्हें किसी भी तरह छेड़ने की हिम्मत न होती। पर ऐसे द्वार पर खड़ी आफ़त टलती भी तो कैसे? आखिर एक बार हिम्मत कर किसी तरह हिचकिचाते उसने कहा, "भाभी, बाहर महाजन खड़े हैं। रुपये के लिए बहुत तंग कर रहे हैं। क्या कह दूँ उनसे? भैया अब न रहे, तो तुम ही तो हो।"

सुनकर भाभी ने जैसे हैरत में आ अपनी आँसू-भरी आँखें उसकी ओर उठायीं और तड़पकर बोलीं, "मैं क्या हूँ? मैं ही रोकड़ सहेजकर रखती थी? टर्राते-टर्राते मेरी यह दशा हो गयी, पर कभी एक पैसा जो उन्होंने मेरे हाथ पर रखा होता! हाय, ऐसे में वह छोड़ गये मुझे! कैसे कटेगी यह पहाड़-सी ज़िन्दगी?" और छाती कूटकर वह और भी

धाड़-धाड़ रो पड़ीं।

सालिक का माथा ठनक गया और दूसरे ही क्षण जैसे उसे काठ मार गया। वह बड़े भाई का सम्मान सदा से करता आया था। उस पर उसका पक्का विश्वास था। स्वप्न में भी उसने कभी यह न सोचा था कि भैया कभी ऐसा भी कर सकते हैं। इस घड़ी भी वह भैया के प्रति कोई असम्मान का भाव अपने में चाहकर भी न ला सका। उसका खयाल था कि भाभी ही....

बाहर आया, तो उसे लगा कि जैसे वह अब ज़रूर पागल हो जायगा। पर उसने अपने मस्तिष्क पर भरसक क़ब्ज़ा रखा। उसने सोचा कि जो भी हो, रुपया कहीं बाहर नहीं गया है। भाभी के पास ही तो है। कभी-न-कभी वह फिर अपनी पहली हालत में आ जायगा।

यह सोचकर जगह-ज़मीन, माल-मता, अपनी पत्नी के ज़ेवर इत्यादि जो भी देखने में स्थायी सम्पत्ति थी, उसी से जिस महाजन को जितना वह दे सका, दे दिया और बाक़ी के लिए कह दिया कि वह सब पाई-पाई चुका देगा। ऋण के एक पैसे का भी भार लेकर वह मरेगा नहीं।

उस समय किशोर की आयु क़रीब-क़रीब पन्द्रह-सोलह साल की थी। किसी तरह मिडिल पास कर लेने के बाद उसकी पढ़ाई छूट गयी। घर की हालत दयनीय हो गयी। बेचारे किशोर का पढ़-लिखकर 'डिप्टी-दरोगा' बनने का मनसूबा टूटकर रह गया।

सँभलते-सँभलते भाभी की हालत जब सँभल गयी, तो उन्होंने एक दिन सालिक को अपने पास बुलाकर कहा, "मेरा मन अब यहाँ नहीं लग रहा है। जब तक यहाँ रहूँगी, उनकी याद मेरे कलेजे का खून पीती रहेगी! किसी को मेरे घर से बुला देते, तो कुछ दिन के लिए माँ के यहाँ चली जाती। शायद वहाँ तबीयत लग जाय।"

सालिक इसी दिन की प्रतीक्षा कर रहा था। वह जानता था कि

एक-न-एक दिन भाभी ऐसी ही बात कहेंगी। उसका पक्का ख़याल था कि किसी-न-किसी तरह हड़पी हुई दौलत लेकर भाभी खिसकने की ज़रूर कोशिश करेंगी। इसी कारण अपने भाई के श्राद्ध में उसने उनकी ससुरालवालों को न्योता न दिया था। इधर वह बड़ी होशियारी से भाभी पर निगाह भी रख रहा था। साथ ही इस कोशिश में भी था कि किसी तरह भाभी के रखे धन का सुराग़ लग जाय, तब वह कुछ करे। पर भाभी इतनी बुद्धू न थीं कि अपना आख़िरी सहारा भी यों हाथ से निकल जाने देतीं।

सालिक ने मुँह लटकाकर दुख-भरे स्वर में कहा, "तुम ठीक कहती हो, भाभी। भैया को खोकर जब मेरी हालत ऐसी है, तो तुम्हारी हालत का क्या कहना? मैं रात-दिन तुम्हारी ही चिन्ता में रहता हूँ। तुम घर की मालकिन हो, खान्दान की इज़्ज़त हो! भला मैं यह कैसे कहूँ कि तुम घर के बाहर पैर रखो! दुनिया कहेगी कि देखो, जब तक भैया रहे, तुम घर की सरताज रहीं और उनके उठते ही........" कहते-कहते सालिक का गला भर आया। उसने तनिक रुककर आर्द्र स्वर में कहा, "भाभी, तुम जो चाहो, मैं करने को तैयार हूँ। पर भरसक मैं यही चाहूँगा कि घर की इज़्ज़त घर में ही रह जाय। तुम घर की लक्ष्मी हो! तुम्हारे चले जाने के बाद घर में हालत और भी बिगड़ जायगी। मेरा तो तुम देखती ही हो। एक लड़की है। तुम्हारी बहिन हमेशा बीमार ही रहती है। उससे अब क्या उम्मीद की जा सकती है। अब तो जो भी उम्मीद है, काली (भाभी का लड़का) से ही है। भला उसे लेकर तुम्हें कहीं कैसे मैं जाने दूँगा? अब चाहे जो भी समझो, मैं ही तो उसका हूँ।"

यद्यपि सालिक की बात कुछ साफ़ न थी, फिर भी भाभी उसकी मंशा समझ गयीं। उनके मन में भी यह बात उठी थी। उन्होंने दुखी होकर कहा, "अब तुम्हीं लोग तो मेरे सब-कुछ हो। तुम्हीं लोगों का

मुँह ताक-ताककर तो मुझे अब जीना है। मुझे क्या यह घर छोड़ने में खुशी होगी ? पर ऐसा न हो कि कहीं तुम्हारी दुलहिन बुरा मान जाय। अपना फूटा भाग्य लेकर मैं घर में किसी तरह भी कलह का कारण नहीं बनना चाहती।"

"सो, मैं सब सँभाल लूँगा, भाभी! मुझे तो सिर्फ़ तुम्हारी आज्ञा की ज़रूरत थी!"

पर सालिक का ख़याल ग़लत निकला। जब उसकी बीमार स्त्री को यह बात मालूम हुई, तो उसने आसमान सिर पर उठा लिया। वह चीख़-चीख़कर कहने लगी कि अगर उसने ऐसा करने का नाम भी लिया, तो वह बेटी को लेकर किसी इनार-पोखर में डूबकर जान दे देगी!

सालिक ने चुपके-चुपके उसे बहुत समझाया-बुझाया, कि वह भाभी के पास के धन के लिए ही यह अस्थायी रिश्ता उससे क़ायम कर रहा है, पर उसकी स्त्री ने जो एक बार 'ना' किया, तो वह अपनी ज़िद पर अड़ गयी।

भाभी को जब यह मालूम हुआ, तो उन्होंने रो-रोकर सालिक से कहा, "बाबू, यह मैं पहले ही जानती थी, तभी तो तुमसे कहा था कि मुझे जाने दो।"

"नहीं नहीं, भाभी, ऐसा मैं नहीं होने दूँगा! घर की लक्ष्मी को चौखट लाँघते देखने के पहले ही मैं मर जाना ज़्यादा पसन्द करूँगा! मैं नहीं, तो किशोर तो है। आखिर उसकी भी तो शादी मुझे कहीं-न-कहीं करनी ही है। भला अब घर में रहते, मैं क्यों बाहर की लड़की खोजने जाऊँ ?" सालिक ने कहकर भाभी की ओर देखा।

"नहीं-नहीं!" भाभी ने सिर हिलाकर कहा, "यह कैसे हो सकता है ? कहाँ किशोर और कहाँ मैं ?"

"क्या कहती हो, भाभी ? वह क्या अब लड़का रह गया है ? अरे,

भैया रहते, तो अबकी नहीं, तो अगले साल उसका विवाह न होता ? तुम ऐसा न सोचो, भाभी। किशोर को मैं जानता हूँ। वह इससे खुश ही होगा। मैं सब ठीक कर लूँगा। तुम किसी बात की चिन्ता न करो !"

"मैं तो ऐसा नहीं चाहती, पर जब तुम कहते हो...." भाभी ने चुप हो सिर झुका लिया।

उस समय गाँव में आर्यसमाज का काफ़ी ज़ोर था। किशोर पर उसका काफ़ी असर भी पड़ा था। सालिक ने उसे समझा-बुझाकर बताया कि भाभी के पास ही घर का खज़ाना है। उनसे वह ब्याह कर लेगा, तो पुण्य तो मिलेगा ही, साथ ही उसकी पढ़ाई भी आगे चल निकलेगी, तो वह राज़ी हो गया।

इस बात की खबर जब गाँव में फैली, तो लोगों ने किशोर की वह-वह सराहना की कि वह फूलकर कुप्पा हो गया। यद्यपि उसकी जाति में विधवा-विवाह वर्जित न था, फिर भी उस उम्र की भाभी से ब्याह करना लोगों के लिए नितान्त सराहनीय ही लगा। उन्हें घर के राज़ की बात क्या मालूम ?

साल बीतते-बीतते किशोर की सगाई भाभी के साथ हो गयी। जवार के सब से अधिक कट्टर आर्यसमाजी ब्राह्मण ने किशोर को आशीर्वाद दिये और उसका फोटो खिंचवाकर 'आर्यमित्र' में छपने के लिए भेज दिया।

भाभी घर के खर्चे के लिए रुपया देने लगी थीं। जब वह रुपये देतीं, तो कभी कहतीं कि नैहर का है, कभी कहतीं कि फलाँ ज़ेवर बन्धक रखकर मँगाया है, कभी कुछ, कभी कुछ। रुपये लेते समय सालिक उनकी बात सुनकर मुस्करा उठता, पर कभी कुछ कहने का साहस उसका न होता।

उसने कई बार किशोर को उकसाया कि वह उनसे कुछ रोज़गार

करने के लिए रुपये माँगे, पर किशोर को तो उन्होंने अब ऐसे अपने में उलझा लिया था कि उससे कुछ कहते न बनता।

गाड़ी चलती देखकर पुराने महाजनों ने फिर सिर उठाया। गाँव में यह अफ़वाह फैल गयी कि सब रुपये भाभी ने धर दबाये थे। महाजन जब बहुत परेशान करने लगे, तो सालिक ने एक बार फिर हिम्मत कर भाभी से कहा। इस पर भाभी ने वही रोना रोकर कहा कि इससे अच्छा तो यह हो कि यह गाँव ही छोड़ दिया जाय। नहीं तो ये मुए शरीर पर जो गहने दो-चार थान बच गये हैं, उन्हें भी नोच-खसोट लेंगे। सालिक भी अब महाजनों को एक पैसा देना न चाहता था। उसने भाभी की बात मान ली और एक दिन रात को चुपके से वे गाँव छोड़कर निकल गये और ज़िले पर एक किराये का मकान ले रहने लगे।

वहाँ भी सालिक ने हर तरह से कोशिश की कि भाभी से कुछ रक़म निकाल ले, पर भाभी कोई साधारण घाघ न थीं। उन्होंने यह अच्छी तरह समझ लिया था, कि उनके पास यही एक ऐसा हथियार है, जिससे वह घर में सम्मान पा रही हैं। किशोर पर जाने क्यों उन्हें पूरा-पूरा भरोसा न था। किशोर को देखकर वह अपने को देखतीं, तो उन्हें लगता कि यह किशोर एक-न-एक दिन उन्हें ज़रूर दग़ा देगा। उसकी जवानी को आखिर कब तक वह मुरझाये फूल से बहलाये रहेंगी? यही बात थी कि वह अपने अस्त्र को अपने से अलग न करना चाहती थीं। उन्हें पक्का विश्वास था कि जब तक वह समर्थ रहेंगी, उनका कोई भी बाल बाँका न कर सकेगा, सालिक और किशोर दोनों उनके सामने हाथ जोड़े खड़े रहेंगे।

सालिक की यह सब से बड़ी असफलता और सब से अधिक अपमान था। चिढ़कर वह एक दिन घर छोड़कर कलकत्ता भाग गया और वहाँ एक सेठ के यहाँ मुनीमी कर ली।

किशोर ने अपनी पढ़ाई पुनः जारी करने के लिए कहा, तो भाभी (शुरू से आदत होने के कारण वह उन्हें अब भी भाभी ही कहता था ।) ने कहा, "इस उम्र में भला अब तुम क्या पढ़ोगे ? तुम्हें तो अब कुछ करने-धरने की फ़िक्र करनी चाहिए। न हो, तुम भी यहीं कहीं नौकरी कर लो। अब तो तुम्हें काली की भी चिन्ता करनी चाहिए। चाहो, तो उसे आगे पढ़ाओ।"

यह सुनकर किशोर कुछ दिनों तक बहुत खिन्न रहा। मालिक के चले जाने से जैसे वह बिलकुल अपंग हो गया था। बहुत सोचकर उसने देख लिया कि वह भाभी के चंगुल में ऐसे पड़ गया है कि उससे छुटकारा पाना असम्भव है। उनके एक-एक इशारे पर नाचने के सिवा कोई चारा ही नहीं रह गया है। आखिर दुनिया का अनुभव ही उसे क्या था ? फिर भी उसका पुरुष हृदय रह-रहकर इस लाचारी से विद्रोह न करना चाहता हो, ऐसी बात नहीं।

और इसी विद्रोह-भावना के वशीभूत हो उसने दौड़-धूपकर शहर के ही एक सेठ के यहाँ मुनीमी की जगह प्राप्त कर ली। इससे उसकी कुछ जलन शान्त हो गयी। सोचा, चलो, अब कौड़ी-कौड़ी के लिए भाभी के सामने ज़लील तो न होना पड़ेगा।

उधर से छुट्टी मिली, तो भाभी ने काली को हाई स्कूल में पढ़ने को भेज दिया। एक तरह से अब खान्दान की गाड़ी कुछ सीधा रास्ता पा चल पड़ी। फिर भी किशोर के हृदय में भाभी के प्रति जो एक प्रतिद्वन्द्विता जल उठी थी, उससे वह फुँक न रहा हो, यह कैसे कहा जा सकता है ?

(२)

देखते-देखते दस साल बीत गये। काली हाई स्कूल पास कर

चुका, तो भाभी ने उसके लिए एक दुकान खुलवा दी। किशोर ने इस ओर रुपये का बहाव देखा, तो वह भी दुकान में दिलचस्पी लेने लगा। इतने दिन मुनीमी करके वह देख चुका था कि इससे कुछ होने का नहीं। और वह चाहता था कि जैसे भी हो, उसके हाथ में कुछ इतना आ जाय कि वह अपने मन की मुराद पूरी कर सके और भाभी के सामने कम-से-कम एक बार तो सिर उठाकर खड़ा हो कुछ कह सके।

अब वह दुकान के बहाने ही तरह-तरह के बाम, दवाइयाँ आदि बना-बनाकर बेचने लगा। अमृतांजन की कहानी वह सुन चुका था। उसे आशा थी कि एक-न-एक दिन उसका बाम भी उसके घर को दौलत से भर देगा!

पर होना तो कुछ और ही था। काली स्कूल का नया-नया निकला युवक था। वह बेचारा क्या जाने कि दुकानदारी क्या बला है। पाँच साल तक किसी तरह चलकर दुकान ने जब दम तोड़ दिया, तो काली ने दुकान उठाकर किशोर के सेठ के प्रेस में ही नौकरी कर ली।

जो भी हो, इससे इतना तो हुआ ही कि किशोर के हाथ कुछ पैसा लग गया। वह मुनीमी के साथ-साथ अपने बाम का व्यवसाय भी चलाता रहा और जी-जान से कोशिश करता रहा कि उसका बाम चल जाय।

सालिक इतने दिनों के बीच केवल एक बार कलकत्ता से आया था। उसकी लड़की सयानी हो गयी थी। उसने उसके ब्याह के लिए कुछ रुपया जमा कर लिया था। किसी तरह उसका ब्याह कर वह पुनः कलकत्ता चला गया था। उसे अपने कुल से अब कोई खास दिलचस्पी न थी। वह कलकत्ता से अपनी बीमार स्त्री के खर्चे के लिए कुछ रुपये हर महीने भेज देता था। वह अपने भविष्य से अब बिलकुल निराश हो गया था। किशोर की तरह उसे कोई महत्वाकांक्षा न रह गयी थी।

प्रेस में काम शुरू करते ही काली का दिमाग़ जैसे खुल गया। प्रूफ़ रीडर से उन्नति कर वह चार-पाँच साल में ही वहाँ से निकलने वाले साप्ताहिक का सम्पादक बन गया। यद्यपि उसकी तनख़ाह तीस रुपये मासिक ही थी, फिर भी उसका सम्मान बढ़ गया। अब वह स्थानीय राजनीति में भी दिलचस्पी लेने लगा और धीरे-धीरे स्थानीय कांग्रेसी नेताओं के एक गुट्ट का महत्वपूर्ण सदस्य हो गया। भाभी ने इसी बीच उसका ब्याह भी कर दिया।

किशोर धन पैदा करने के लाख जतन कर रहा था, पर कोई उपाय कारगर न होता। उसने अपने बाम का नाम 'गाँधी बाम' रख दिया था और उसके लेबिल वग़ैरा कलकत्ता से छपवाकर मँगवाया करता था। फिर भी, इतना-सब करने पर भी जब उसका बाम न चला, तो उसे ख़याल आया कि शायद एक छोटी जगह का नाम लेबिल पर रहता है, इसी लिए लोगों का ध्यान इस बाम की तरफ़ आकर्षित नहीं होता। तब बहुत-कुछ सोच-साचकर उसने सालिक को लिखा कि कलकत्ता में वह कहीं एक कोठरी किराये पर ले ले, ताकि उसका ही पता बाम पर छापा जाय।

भाभी उसे इस तरह परेशान और धुन में लगा हुआ देखतीं, तो बड़े प्यार से कहतीं, "इस तरह बेकार के लिए परेशान होकर क्यों शरीर ख़राब कर रहे हो? अरे, अब तो काली भी कमा ही रहा है। मेरे पास भी कुछ है। किसी तरह दिन कट ही जायँगे। ख़ामख़ाह के लिए चिन्ता कर दिमाग़ की शान्ति ख़राब करने से क्या फ़ायदा? काली कहता है कि दो-चार साल में वह ज़िला-कांग्रेस का मन्त्री हो जायगा। फिर तो सब तकलीफ़ें छूमन्तर हो जायँगी।" भाभी बड़ी होशियारी से हाथ मीसकर खर्च करती थीं। किसी तरह किशोर को यह न मालूम होने देती थीं कि उनके पास काफी रुपया है। पर जब उन्होंने देखा कि किशोर रुपया पैदा करने के लिए बेतरह हाथ-पाँव

मार रहा है, तो उन्हें खटका लगा कि कहीं सचमुच यह अपने मनसूबे में कामयाब हो उन्हें दूध की मक्खी की तरह न निकाल फेंके। इस बात का भय उन्हें शुरू से ही था। किशोर का व्यवहार भी भाँप-भाँप-कर वह इसी तरह के नतीजे पर पहुँचती थीं। किशोर कभी भी उनके सहवास में वह आनन्द, वह आराम और वह शान्ति महसूस न करता था, जो एक पति अपनी पत्नी के साथ करता है। इसी लिए किशोर के मनसूबे को टेढ़े तौर पर तोड़ने के लिए उन्होंने एक काँटा फेंका कि उनके पास भी कुछ है, ताकि वह रुपये पैदा करने की चिन्ता से लापरवाह हो जाय।

पर किशोर ने तो अपना लक्ष्य जैसे निश्चित कर लिया था। उसे मालूम हो गया था कि भाभी के साथ तो उसकी ज़िन्दगी ही बरबाद हो जायगी। एक दिन के लिए भी वह यह अनुभव न कर सकेगा कि जीवन का सच्चा आनन्द क्या है। वह भाभी के चेहरे पर छायी झुर्रियों को देखता, तो जैसे उसका जी मिचला जाता। उनकी ओर फिर दुबारा देखने का साहस न करता। सोचता, यह कितना बड़ा षड्यन्त्र इन लोगों ने किया है उसके जीवन के साथ! कई बार उसके जी में आया था कि वह अलग हो जाय, और एक जवान लड़की से ब्याह कर जीवन आनन्दपूर्वक व्यतीत करे। पर इतना पैसा ही उसके पास कहाँ था कि वह स्वतन्त्रतापूर्वक अपना जीवन बिताने की बात पर अमल करता।

भाभी ने जिस चतुरता से वह बात कही थी, उससे भी बढ़कर चतुरता से किशोर ने कहा, "मुझे अपनी चिन्ता नहीं है। मैं तो रात-दिन अपने ख़ान्दान की पुरानी मान-प्रतिष्ठा को ही लेकर घुला करता हूँ। ओह, क्या था और क्या हो गया! महाजनों से आज तक पिंड न छूटा। घर की यह हालत कि दो जून रोटी भी अच्छी तरह नहीं चलती! नहीं, नहीं, यह-सब मुझसे नहीं देखा जाता! या तो मैं अपने ख़ान्दान को पुनः उसी मान के सिंहासन पर बैठाऊँगा या उसी प्रयत्न

में जान दे दूँगा, पर यह ज़लालत मैं हर्गिज़ बर्दाश्त नहीं कर सकता !" कहकर वह हट गया।

सालिक ने धर्मतल्ला स्ट्रीट में चौथी मंजिल पर एक पाँच फ़ुट चौड़ी और सात फ़ुट लम्बी कोठरी किराये पर ले ली। सड़क की ओर उसने 'गाँधी बाम' का एक बहुत बड़ा, भड़कीला साइन बोर्ड भी लटका दिया। लेबिल भी खूब रंगीला छपवाकर किशोर के पास भेज दिया। किशोर को आशा बँधी कि अब उसका बाम ज़रूर चल जायगा। कलकत्ता के नाम में मद्रास के नाम से कहीं अधिक आकर्षण है। अमृतांजन अब उसके 'गाँधी बाम' के सामने क्या ठहरेगा? अब वह और भी जी-जान से काम करने लगा। प्रचार के लिए अब वह जगह-जगह एजेंसियों की भी बातचीत करने लगा।

एक-दो साल बाद तो नहीं, हाँ, आठ साल बाद सन् ३६ में काली सचमुच जिला-कांग्रेस का मंत्री हो गया। यह वक्त भी अच्छा था, क्योंकि इसी समय कांग्रेस की हुकूमतें प्रान्तों में क़ायम होने जा रही थीं। काली की खुशी का ठिकाना न था। भाभी भी फूली न समायीं। उन्होंने किशोर से कहा, "यह क्या बाम-वाम के चक्कर में पड़ ज़हमत मोल ले रहे हो! अब काली मन्त्री हो गया। कांग्रेस की हुकूमत अब क़ायम होने जा रही है। हमारी पाँचों घी में हैं। काली हमारे खान्दान की खोयी प्रतिष्ठा फिर वापस लायेगा। तुम लोगों को अब चिन्ता करने की कोई ज़रूरत नहीं!" भाभी को अब पूरी आशा हो गयी थी कि खान्दान की बागडोर उनके लड़के के हाथ में आ रही है। उसकी छत्र-छाया में उन्हें अपने पद से कौन च्युत कर सकता है? फिर भी उन्हें किशोर की तरफ़ से आशंका बनी ही रही कि कहीं वह अपने व्यवसाय में सफल हो, मनमाना करने का संयोग न पा जाय।

किशोर को काली की सफलता से लगा कि उसके पाँवों की ज़ंजीर दुहरी हो गयी है। वह काली को एक क्षण के लिए भी अपना बेटा न

समझ सका था, और न काली ही उसे पिता समझता था। बल्कि ये तो कभी रू-ब-रू होकर बातें भी न करते थे। किशोर अपनी असफलता और काली और भाभी की सफलता से रह-रहकर झुँझला उठता था। पर बेचारा करता क्या? कलकत्ता की योजना भी उसकी असफल ही रही। विज्ञापन के अभाव में उस तरह के व्यवसाय में सफलता प्राप्त करना असम्भव है और किशोर के पास उसके लिए पैसा न था। बेचारा भाभी की बात सुनकर कई बल खा गया। फिर भी बोला, "ठीक है। मैं तो यही चाहता हूँ। पर कांग्रेस का काम जोखिम का है। आज कांग्रेस की हुकूमत होने जा रही है। कल जाने क्या हो? कहीं काली के लिए जेल जाने की नौबत न आ जाय।"

"क्या कहते हो? काली क्या इतना बेवक़ूफ़ है? वह मुझसे सब बताता है। वह तो कहता है कि जब जैसे उसे फ़ायदा होगा, वह वही करेगा।"

"देखो", कहकर किशोर किसी काम में उलझ गया। भाभी से बात करना उसे तनिक भी अच्छा न लगता था।

(३)

भाभी ने जो कहा था, वह ठीक ही था। सचमुच जब दूसरा महा-युद्ध शुरू हो गया और कांग्रेस ने प्रान्तों में अपनी सरकारों से स्तीफ़ा दे व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन छेड़ दिया, तो काली भी कांग्रेस से स्तीफ़ा दे 'अमन सभा' में शामिल हो गया।

युद्ध के दो-तीन साल बीतते-बीतते महँगाई दिन दूनी, रात चौगुनी बढ़ने लगी। किशोर के सेठ का व्यवसाय भी आसमान छूने लगा। उसने किशोर को एकबार कलकत्ता काग़ज़ खरीद करने के लिए भेजा। काग़ज़ का दाम घड़ी-घड़ी बढ़ रहा था। सेठ को इस खरीद से बेपनाह

लाभ की आशा थी।

सेठ के आज्ञानुसार, बिना एक क्षण भी गवाँये, किशोर ने कलकत्ता पहुँचते ही चटपट काग़ज़ की ख़रीद कर ली। दुकान में भीड़ होने के कारण तत्काल बीजक न मिल सका। दुकान के मुनीम ने ख़रीद पक्की कर एक घण्टे के बाद बीजक ले जाने के लिए कह दिया।

किशोर खाने-पीने के लिए सालिक के यहाँ चला गया। वहाँ खा-पीकर ज़रा आराम करने के लिए लेटा, तो उसे नींद आ गयी। थका तो था ही।

शाम को उसकी नींद खुली, तो वह घबरा गया। सालिक से कहा, "देखो, एक घण्टे के बाद बीजक के लिए मुनीम ने बुलाया था। मुझे नींद आ गयी। सेठ को ख़रीद का तार भी अभी नहीं दिया। वह घबरा रहा होगा। कहीं कुछ गड़बड़ हो गया, तो...."

"अरे, नहीं। कहीं ऐसा भी होता है। चलो, मैं चलता हूँ। बीजक लेकर लौटते समय सेठ को तार दे देंगे।" सालिक ने कहा।

दोनों वहाँ पहुँचे, तो मुनीम ने हँसकर कहा, "बोलो, माल बेंचते हो? एक लाख का सवा लाख, अभी, इसी छन!"

किशोर अकचका गया। पर सालिक कलकत्ता रहते-रहते यह-सब ख़ूब समझ गया था। उसकी आँखें चमक उठीं। उसने उसी क्षण कहा—हम बेचने नहीं माल ख़रीदने आये हैं।....लेकिन तुम मेहरबानी करके एक काम कर दो।"

"जो कहो!" मुनीम ने कहा।

"इस सौदे के दो बीजक बना दो, एक एक लाख का और दूसरा पच्चीस हज़ार का।" सालिक ने कहा।

"अच्छा, अच्छा जी!" और मुनीम आँखों में ही मुस्कराया।

किशोर की तो जैसे आँखें खुल गयीं। वह कुछ समझ न पा रहा था कि यह-सब क्या हो गया। सालिक ने उसका हाथ पकड़, बाहर ला

कहा, "चलो, सेठ को तार दे दें।"

सालिक ने सेठ को एक लाख की खरीद का तार दिया, तो किशोर ने पूछा—"और पच्चीस हज़ार?"

सालिक ज़ोर से हँसा। फिर किशोर का कन्धा ठोंककर कहा, "इतने दिन कलकत्ता में रहकर मैंने भाड़ नहीं झोंका। आज जाकर एक सुनहरा मौक़ा हाथ आया। पच्चीस हज़ार नहीं, पच्चास, सौ.... अनगिनत...." और वह ज़ोर से हँसकर बोला, "फ़र्म, फ़र्म चलेगा हमारा, सालिक राम किशोर प्रसाद!"

किशोर को अब जाकर समझ में आया और उसे लगा कि भगवान् ने आज सचमुच उसकी सुन ली! वह भाई के गले लिपट गया।

लौटकर जब वे फिर मुनीम के पास पहुँचे, तो उसने कहा "छै सैकड़ा मुनाफ़ा! बोलो बिक्री करते हो?"

सालिक ने उदास होकर कहा, "एक लाख का तो तार दे दिया। अब पच्चीस हज़ारवाला माल बेचो और बिक्री सालिक राम किशोर प्रसाद बलियावाले के नाम जमा करो।"—लेकिन फिर कहा—नहीं, अभी रहने दो।

मुनीम हँसा—"यहाँ छन-छन में लाखों का वारा-न्यारा होता है। तुम्हारा सौदा सोना है। एक लाखवाला बीजक तुम्हारा यह रहा।"

बीजक लेकर सालिक ने कहा, "हमारा बाक़ी माल तुम्हारे यहाँ जमा रहेगा। कल फिर बतायेंगे। ले जाना होगा, तो ले जायेंगे, नहीं तो जैसा होगा बाज़ार देखकर करेंगे। यह लाखवाला माल उठ जायगा।"

इतने वर्षों के बाद आज पहली बार किशोर के चेहरे पर खुशी का रंग दिखायी पड़ा। उसकी आँखें चमक रही थीं। उसका अंग-अंग फड़क रहा था। रात-भर उसे नींद न आयी। भाई के साथ बैठा-बैठा बड़ी रात तक आगे की योजनाएँ बनाता रहा।

मालिक ने कहा, "तुम्हें अब मुनीमी करने की ज़रूरत नहीं है। जाते ही वहाँ बाज़ार में एक दुकान किराये पर ले लेना। मैं धीरे-धीरे थोड़ा-थोड़ा माल यहाँ से भेजता रहूँगा। फिर मैं भी यहाँ की नौकरी छोड़कर चला आऊँगा। इसे तुम काग़ज़ नहीं, सोना समझो ! दिनों में ही अब सोना बरसेगा। लड़ाई रहते तक इसका भाव चढ़ता ही जायगा। हाँ, काली क्या कर रहा है ?"

"वह जिला अमन-सभा का सिक्रेटरी हो गया है," किशोर ने कहा।

"तो बस ठीक है। सुना है, अब कन्ट्रोल होनेवाला है। काली की जान-पहचान वहाँ के अफ़सरों से रहेगी, तो फ़ायदा ही रहेगा। फिर हमारा काम भी बढ़ते देर न लगेगी। काली पढ़ा-लिखा है। उसे भी अपनी दुकान पर काम दो। अकेले सँभालना तुमसे मुश्किल होगा। फिर तो मैं भी पहुँचूँगा ही।" तनिक रुककर उसने फिर कहा, "हाँ, ज़रा होशियारी से काम लेना। किसी को कुछ मालूम न हो।"

दूसरे ही दिन सेठ का माल बुक कराकर किशोर लौट पड़ा। आते ही उसने सब ठीक-ठाक करके काली से कहा, "अब अपना ही कुछ काम करना अच्छा होगा। नौकरी से कुछ बनने का नहीं। भैया कलकत्ता से कुछ काग़ज़ भेजनेवाले हैं। यहाँ काग़ज़ का एक चिट भी किसी के पास नहीं है। सेठ का काग़ज़ पटना जा रहा है।" फिर उसने अपने नाम की फ़र्म खोलने की बात कह दी।

इस पर काली ने कहा, "फ़र्म-वर्म सब पुराने तरीक़े के नाम होते हैं। आज के ज़माने में उनमें कोई आकर्षण नहीं रह गया है। क्यों न उसका नाम 'गाँधी पेपर स्टोर' रखा जाय ?"

"ठीक है, बेटा !" आज पहली बार उसने काली को बेटा पुकारकर कहा—"जैसा चाहो, करो। तुम्हीं को तो सब करना है।" किशोर अब काली को अपनी ओर खींच लेना चाहता था, ताकि भाभी उसे अपनी ओर फोड़कर कुछ न कर सकें।

कलकत्ता से काग़ज़ आने लगा। दुकान चल निकली। बाज़ार में काग़ज़ का अभाव होने के कारण जिस भाव वह चाहते, बेंचते और मनमाना फ़ायदा उठाते। काली ने फ़ायदा देखा, तो उसे खूब दिलचस्पी हो गयी। नौकरी उसने छोड़ दी और जी-जान से दुकान में ही लग गया।

किशोर को इस वक़्त जैसे होश न था। बढ़ते हुए रुपये को दिन-रात बढ़ाने की धुन में वह पागल-सा हो गया था। कभी यहाँ, कभी वहाँ दौड़-धूपकर जहाँ ऊँचा बाज़ार होता, माल बेंचता; जहाँ भाव सुभीते का होता खरीदता। काली दुकान सँभाल रहा था।

तभी कन्ट्रोल और कोटे का ज़माना आ गया। काली अपनी पहुँच और सिफ़ारिश से सप्लाई कमिटी का मेम्बर बन गया। अब क्या था, ज़िले का पूरा कोटा उसे मिल गया। कन्ट्रोल के भाव पर उसे काग़ज़ मिलता और बेंचता वह ब्लैक से। डर तो उसे कोई था नहीं। पूरी धाँधली थी उस वक़्त। वह सप्लाई कमिटी का मेम्बर था। अफ़सरों को चटाता रहता था और खुलकर धन बटोर रहा था।

देखते-देखते उनका दिन लौट आया। जहाँ कुछ न था, अब सब-कुछ नज़र आने लगा। बज़ार में उनकी चर्चा होने लगी। साख बढ़ गयी। हज़ारों के वारे-न्यारे होने लगे। मालिक भी अब यहीं आ गया। रहने के लिए उन लोगों ने अब एक पुराना घर भी ख़रीद लिया। काली अपने ज़ोर से मकान बनवाने के सामान का ज़रूरत से ज़्यादा परमिट लेकर, काफ़ी लोहा-सिमेंट ब्लैक में बेंचकर, उसी के फ़ायदे से एक कोठी भी खड़ी करने लगा।

भाभी हैरान थीं कि यह क्या, कैसे हो रहा है? उस वक़्त किसी को उनसे बात करने की एक मिनट की भी फ़ुरसत न थी। रात-दिन वे रुपया बटोरने की धुन में रहते थे। वे जानते थे कि यह महँगाई का ज़माना हमेशा नहीं रहने का। तब तक जितना कर सको, कर लो।

भाभी का दिल अब हर घड़ी धक-धक करता रहता था। पर अब किशोर की उम्र काफ़ी हो गयी थी। इसलिए वह यह भी सोचती थीं कि अब क्या वह उन्हें छोड़ेगा? फिर भी, न जाने क्यों, उनका मन बराबर यह कहता रहता, 'कौन जाने, कौन जाने?' और उनकी घबराहट दिन-दिन बढ़ती ही जाती थी।

पैंतालीस में फिर कांग्रेस का ज़माना आया, तो लोगों ने सोचा, अब 'गाँधी स्टोर' का ज़माना उलटेगा। उनकी धाँधली ख़त्म होगी। उनका काग़ज़ का एकाधिकार भी ख़त्म हो जायगा। पर कौली कोई कच्ची गोली खेला हुआ न था। उसने रुख़ बदला। समाज में धन के कारण उसका स्थान तो बन ही गया था। वह ज़िला-कांग्रेस की एक पार्टी में शामिल हो गया। कांग्रेस को कुछ दान भी दे दिया और अपनी चतुराई से सप्लाई कमिटी में जैसा-का-तैसा बना ही न रहा, बल्कि ज़िला-कांग्रेस कमिटी में भी अपना एक महत्वपूर्ण स्थान बना लिया। नतीजा यह हुआ कि अब उसे लोहे का भी कोटा मिल गया। अब क्या था, दोनों हाथों से रुपया बटोरने लगा। उसके ब्लैक पर किसी की नज़र उठे, ऐसा वह कब होने देनेवाला था। सब को वह किसी-न-किसी तरह ख़ुश रखता।

चारों ओर से जब निश्चिन्त हो गया, कोठी तैयार हो गयी, व्यवसाय मशीन की तरह बेरोक-टोक चलने लगा, मान-प्रतिष्ठा प्राप्त हो गयी, तब जाकर जैसे किशोर को होश हुआ। देखा, तो उसके बाल काफ़ी पक ही नहीं गये, बल्कि उड़ भी गये थे, गालों की हड्डियाँ उभर आयी थीं, गढ़ों में धँसी आँखों के नीचे स्याही के हल्क़े उभर आये थे, कनपटियाँ धँस गयी थीं। उसे इसका ख़याल भी न था कि इस बीच वह इतना बूढ़ा हो गया है। तब उसे अपनी मिहनत, दौड़-धूप, परेशानी की याद आयी। ओह, यह तो बुरा हुआ! क्या इसी लिए उसने यह सब किया? नहीं, नहीं, अब भी वह अपने को सँभालने की कोशिश

करेगा। नहीं तो सब बेकार है, सब बेकार है !

धन की कोई कमी थी नहीं। अब खूब खाने-पीने लगा। टानिक और पौष्टिक पदार्थों का सेवन भी शुरू कर दिया। कुछ कसरत भी करने लगा। और सब चिन्ता छोड़कर बेफ़िक्री की ज़िन्दगी बिताने लगा। गर्मी आयी, तो बीमारी का बहाना बनाकर पहाड़ चला गया।

शरीर उसका महीनों में ही लौट आया। मोटा भी हो गया और अन्दर से स्फूर्ति भी महसूस करने लगा। भाभी के पास वह एक मिनट के लिए भी न बैठता। भाभी में अब कुछ रह भी न गया था। वह बिलकुल बूढ़ी हो गयी थीं। किशोर उनकी ओर फूटी आँखों भी देखना न चाहता। फिर भी भाभी अपनी सेवा-टहल से उसे अपने में उलझाये रखने से बाज़ न आतीं। पर किशोर अब उनकी परवाह क्यों करता? भाभी मन-ही-मन सिर धुनने लगीं। हाय, जो डर उन्हें था, क्या वह........

किशोर अब अपने मन की करने का वातावरण घर में बनाने लगा। भाभी से उसके कोई लड़का न हुआ था। सालिक की बीमार पत्नी अब अच्छी ज़रूर हो गयी थी, पर उससे भी कोई लड़का होने की उम्मीद न थी। एक दिन उसने सालिक से शरमाते-शरमाते कहा, "भैया, आज सब-कुछ हमारे पास है, पर अफ़सोस कि कोई भोगने वाला न रहा!"

"क्या मतलब?" अचकचाकर उसका मुँह तकते सालिक ने कहा।

"अरे," ठण्ढी साँस लेकर किशोर ने कहा, "न मेरे कोई लड़का हुआ, न तुम्हारे!"

"तो क्या हुआ? काली तो है! उसके लड़के-बाले तो हैं!"

"सो तो ठीक है, भैया, पर अपने खून की बात ही कुछ और होती

है।" उदास हो किशोर ने कहा।

"क्या कहता है ? अरे, वह क्या कोई ग़ैर है?" जैसे कुछ न समझ सालिक ने कहा।

"नहीं, भैया, यह बात नहीं। पर, सच कहना, क्या तुम्हारे दिल में कभी यह बात नहीं उठी कि कभी अपने लड़के को अपनी गोद में लेकर खेलाते?" किशोर ने सालिक की एक दुखती रग पर अँगुली रख दी।

धीरे से एक करुण हँसी हँसकर सालिक बोला, "भला कौन यह नहीं चाहता, किशोर! पर यह क्या कोई अपने बस की बात है ? भाग्य में बदा ही न था, तो...."

"नहीं, भैया, ऐसी बात नहीं। भाभी बीमार न रहतीं, तो.... मैं तो कहूँगा कि तुम अब भी चाहो, तो...." कहकर किशोर ने आँखें नीचे कर सालिक को कनखियों से भाँपा।

"क्या मतलब?" सालिक फिर अचकचा उठा।

"यही कि दूसरी शादी...."

"हिश! अब क्या यह-सब करने की मेरी उम्र रह गयी है ? चाहते हो कि बुढ़ौती में मुँह काला करूँ?"

"क्या कहते हो, भैया! अभी तुम ज़रा इन्तज़ाम से खाओ-पिओ, तो...."

"वह-सब नहीं होने का, किशोर! मैं अपने को समझता हूँ।" तनिक रुककर, कुछ सोचकर वह फिर बोला, "हाँ, तुम चाहो, तो मैं कोशिश करूँ। मैंने तुम्हारे साथ, लालच में पड़कर, एक बहुत बड़ा अन्याय किया था। तुम्हारी जवानी नष्ट हो गयी। तुम्हारी सब लालसाएँ मिट्टी में मिल गयीं। चाहो तो मैं उस अपराध का प्रायश्चित्त कर दूँ। यों तुम्हारी उम्र भी अभी कोई अधिक नहीं है! इस उम्र में तो देश के नेता भी आज-कल ब्याह कर रहे हैं। दो-चार हज़ार ख़र्च करने से

मेरे देखने में कोई दिक़्क़त न होगी।"

सिर झुकाकर किशोर ने कहा, "मेरा मतलब यह नहीं था, भैया। और फिर काली की माँ...."

"उँह, उस बूढ़ी की चिन्ता तुम मत करो! उसने मामूली नाच नहीं नचाया है हमें। तुम तैयार हो जाओ, तो मैं सब-कुछ भुगत लूँगा।"

"नहीं, नहीं, भैया, भला दुनिया क्या कहेगी?"

"दुनिया की खूब कही! अरे, ठाठदार दावत कौन नहीं चाहता, रे? पैसेवालों पर नज़र उठाना किसी के लिए आसान नहीं। तू इसकी चिन्ता मत कर! मैं आज ही से इस फ़िक्र में लग जाऊँगा और अगली लगन में ही...."

(४)

भाभी ने यह बात सुनी, तो उन्होंने रोना-धोना शुरू कर दिया। काली को बुलाकर कहा, "तू अलग हो जा इस घर से! मै अब इस घर में एक छन भी न रहूँगी!"

पर काली इतना बेवक़ूफ़ न था। वह जानता था कि यह बूढ़ा एक नहीं, बीस शादी भी करे, तो भी कुछ होने-जाने का नहीं। यह तो सिर्फ़ उसकी हिर्स है। फिर क्यों वह बेवक़ूफ़ी कर, माँ की बेकार बात के चक्कर में पड़कर अलग हो और अपना नुक़सान करे? आखिर एक दिन सब उसी का तो होगा। उसने इधर-उधर कर माँ को टाल दिया।

फिर भाभी ने सालिक से कहा, तो सालिक ने जैसे व्यंग्य किया, "धन की चर्बी चढ़ गयी है उस पर! वह भला किसी की बात सुनेगा? अरे, उसे तो खुद शर्म करनी चाहिए कि इस बुढ़ौती में....पर उसे

समझाये कौन ? तुम्हीं समझाओ न !”

पर किशोर तो आज-कल अपने गाँव के घर में चला गया था। फिर उससे भाभी कुछ कहतीं भी, तो क्या फ़ायदा होता ? वह अब क्या करें, उनकी समझ में न आता था। वह रात-दिन रोती रहतीं, पर कोई उन्हें चुप कराने भी न आता था। जैसे वह घर में एक बिलकुल ही व्यर्थ की जीव हों, जैसे अब किसी का उनसे कोई सम्बन्ध ही न रह गया हो।

*

और आज जून, सन उन्नीस सौ उनचास है। किशोर के दरवाज़े पर शहनाई बज रही है। शहर के सब बड़े-बड़े लोगों, अफ़सरों, नेताओं की भीड़ लगी हुई है। दुलहिन यहीं बुला ली गयी है। ब्याह की रस्में यहीं पूरी की जायँगी। वही आर्यसमाजी ब्राह्मण, जिसने किशोर की पहली शादी करायी थी, आज भी ब्याह कराने आया है। पता नहीं, इस बार वह किशोर का फोटो कहीं छपने के लिए भेजेगा या नहीं। पर इतना तो निश्चित है कि इस बार उसे दान-दक्षिणा बहुत अधिक मिलेगी।

भाभी इस समारोह से अलग-थलग एक कोठरी में बैठी रो रही हैं। उनको पूछनेवाला कोई नहीं है। कभी-कभी उनके जी में आता है कि वह सीधे दौड़कर मंडप में जायँ, और चीख-चीखकर कहें, ‘यह अन्याय है ! इस बुढ़ौती में एक सोलह साल की लड़की से शादी करते किशोर को शर्म आनी चाहिए ! उसे चुल्लू-भर पानी में डूब मरना चाहिए ! अगर यह शादी न रोकी गयी, तो मैं जान दे दूँगी !’ पर न जानें क्यों वह उठ नहीं पातीं और जैसे उनके मन में बैठा कोई उनका गला दबाकर बार-बार कहता है, ‘नहीं, यह अन्याय नहीं है। और

अगर यह अन्याय है, तो तुमने भी चालीस साल पहले उस पर यही अन्याय किया था। उस वक्त तुम्हारे पास धन था, तुम समर्थ थीं, तो तुमने जो जी में आया, किया। आज उसके पास धन है, वह समर्थ है, तो वह अपनी लालसा पूरी कर रहा! याद है तुम्हें, उस समय किशोर की भी यही आयु थी, जो इस नयी दुलहिन की है, जो निश्चय ही असमर्थ है, नहीं तो इस गड्ढे में क्यों आ गिरती?'

भाभी को क्या मालूम कि आजकल के रिश्तों का आधार धन की शिला पर स्थित है। और जब तक यह शिला ढह नहीं जाती, तब तक यह चलता ही रहेगा।

और भाभी चुप रह जाती हैं, जैसे बोलने के लिए उनके पास मुँह ही न रह गया हो। पर कलेजा उनका फटा जा रहा है। वह ज़ार-ज़ार रो रही हैं। और दरवाज़े पर शहनाई के स्वर और भी ऊँचे होते जा रहे हैं। ब्राह्मण मन्त्रोच्चार कर रहा है। और बड़े-बड़े लोगों, अफ़सरों और नेताओं के खुशी के ठहाकों के बीच मंडप में बैठे किशोर की आँखें हर्ष से चमक रही हैं। वह बार-बार मन में ही कहता है, 'कौन कहता है कि मैं बूढ़ा हो गया हूँ?'

महफ़िल

कुशल-समाचार की बातें बहुत लम्बी नहीं हुआ करतीं। और इस मुहल्ले में रहनेवालों के पास अपने सुख-दुख के सिवा था ही क्या! दो क्षण को दो मिलते, तो राम-राम और कुशल-समाचार और फिर कृत्रिम मुस्कराहटें ऐसी, जैसे गाड़ी पास हो जाने का सिगनल। तुम अपनी राह, हम अपनी। दुनिया बहुत लम्बी-चौड़ी है, होगी। दुनिया में हज़ारों तरह की बातें हैं, होंगी। हमें उनसे क्या? आप भला, जग भला। हम किसी के यहाँ मिलने जायँ और चाय पियें, तो क्या यह शिष्टाचार नहीं कि वह भी हमारे यहाँ आये और हम भी उसे चाय पिलायें? नहीं, साहब, यह रोग हम पालते ही नहीं। न ऊधो का लेना, न माधो का देना। राम-राम, कुशल-समाचार। राह-रस्म बनी रहे, बहुत है।

लेकिन एक दिन इन कौओं के बीच मोर की तरह जाने कहाँ से एक 'राजा साहब' आ टपके और शेरोंवाली कोठी, (इसलिए कि उसके फाटक के दोनों खम्भों पर एक-एक पत्थर का शेर बैठाया गया था) जो बरसों से किसी झगड़े में पड़ आवारा गायों का थान बन चुकी

थी, आबाद हो गयी। उस दिन सुबह जब लोग बाज़ार से सर-सामान लेने उधर से गुज़रे, तो कोठी के फाटक पर उन्होंने उस नये आदमी को आँखें फाड़कर देखा। बड़ी-बड़ी, रोबीली आँखें, फूले-फूले सुर्ख़ गाल, घनी, बिच्छू के डंक की तरह काली-काली मूँछें, प्रौढ़ आयु, लम्बा-तड़ंगा। पिंडलियों तक सफ़ेद चम-चम रेशमी घुटन्ना और ठेहुनों तक वैसी ही गंजी। वह फाटक पर टहल रहा था। जिससे भी आँखें मिलीं, होंठों से आप ही नमस्कार निकल गया।

उस दिन घरों में और दफ़्तरों में उसी की चर्चा रही, अरे भाई, वह शेरोंवाली कोठी आबाद हो गयी!....कैसा रोबीला आदमी है!.... मुझे तो लगा कि दो शेरों के बीच एक तीसरा शेर आ खड़ा हुआ हो!....कोई बड़ा आदमी मालूम होता है!....

और दो-तीन दिन में ही लोगों को उसके बारे में बहुत सारी बातें मालूम हो गयीं।....जौनपुर ज़िले का कोई बहुत बड़ा ज़मींदार है।....राजा साहब कहलाता है।....ज़मींदारी टूट जाने के कारण यहाँ कोई बड़ा कार-बार करने के इरादे से आया है।....उसके साथ दो लड़कियाँ और पाँच नौकर-नौकरानियाँ हैं।....एक लड़की कालेज में पढ़ती है, दूसरी युनिवर्सिटी में।....क्या शानदार कार है उसके पास!....

और फिर लोगों ने पाया कि जितना ही वह बड़ा आदमी है, उतना ही मिलनसार भी!....किसी ने बताया, साहब, आदमी हो तो ऐसा! सुबह मैं सब्ज़ी लेने जा रहा था। शेरोंवाली कोठी से गुज़रा, तो फाटक पर वह टहल रहा था। आँखें मिलीं, तो नमस्कार किया। फिर क्या था, साहब, बढ़कर उसने मेरी सायकिल की हैंडिल पकड़ ली। बोला, वाह साहब! यह दूर-दूर से ही नमस्कार आप लोग कब तक करते रहेंगे? कभी तशरीफ़ लाइए। हमें भी अपनों में ही एक समझिए। बोलिए, आज शाम को तशरीफ़ लायेंगे न? यहीं कहीं

पास ही रहते होंगे। किस दफ़्तर में काम करते हैं?....भाई, मैं तो दंग रह गया। मैं समझता था, बहुत बड़ा आदमी है, हम-सरीखों को क्यों मुँह लगाने लगा? लेकिन नहीं, साहब, एक ही आदमी मालूम पड़ता है!

और सुननेवालों ने कहा, बिलकुल यही, बिल्कुल यही!

और देखते-देखते राजा साहब के यहाँ शाम की महफ़िल जमने लगी। ठंडाई के साथ पान-सिग्रेट। और राजा साहब के लखनौए ज़र्दे का लोगों को कुछ ऐसा चस्का लगा, कि घरवालियों की डाँट-फटकार भी बेमानी हो गयी। दफ़्तर से छूट, भागम-भाग घर आ सायकिल पटकी और राजा साहब के यहाँ हाज़िर! पीछे से औरत चिल्लाती रहे, कौन परवाह करता है!

राजा साहब की ज़बान पर हर आदमी का नाम ऐसे आ गया, जैसे वे सब-के-सब उनके ज़माने के परिचित हों। और लोगों ने पाया कि राजा साहब में इतनी ख़ूबियाँ हैं, जितने आसमान में तारे।

एक दिन राजा साहब ने कहा, "भई, आदत भी क्या शै है!

लोग चौकन्ने होकर सुनने लगे।

राजा साहब ने महफ़िल पर एक नज़र डाली और आगे बढ़े, "अब हमारी आदत ये कि जब तक दस को खिला न लें, मुँह में कौर न पड़े; जब तक दस की महफ़िल में दस-पाँच बातें कह-सुन न लें, रात को नींद न आये।....और अब तक़दीर का करना यह हुआ कि हमारी महफ़िल उजड़ गयी, वतन छूट गया और इस बेगानी जगह पर आ पड़े। खाना ख़राब हो गया, नींद हराम हो गयी।....लेकिन वो कहा है न, भगवान चींटी को चून देता है, तो हाथी को दून। साहबान! हम आप लोगों के शुक्रगुज़ार हैं कि आप लोगों ने हमारी महफ़िल गुलज़ार कर दी!"

"अजी साहब, हम लोग क्या हैं!" लोग बोल उठे, "यह तो

आपकी मेहरबानी है कि हमारी शामें रौशन हो गयीं !"

और राजा साहब ने आवाज़ लगायी, "अबे ननकुआ ! सिग्रेट का दूसरा टिन ला !"

*

जाड़े के दिन आये। शामें उदास होने लगीं। और राजा साहब ने देखा कि उनकी महफ़िल की रौनक भी कम होती जा रही है। उनकी समझ में न आ रहा था कि ऐसा क्यों हो रहा है। आदर-सत्कार में तो कोई कमी हुई नहीं। ठंडाई की जगह अब चाय का प्रबन्ध रहता है। सिग्रेट-पान की कमी नहीं। फिर भी महफ़िल नहीं जमती। इक्के-दुक्के लोग आ भी जाते हैं, तो उन्हें जल्दी ही भाग जाने की पड़ी रहती है।

शनिवार की शाम थी। आज महफ़िल कुछ जमी थी। राजा साहब ने पूछा, "भई, ये क्या बात है ? ऐसी हमसे क्या खता हुई कि आप लोग....

"नहीं-नहीं, साहब," लोग बोल उठे, "ऐसी कोई बात नहीं !"

एक बोला, "आजकल दफ़्तर से लौटते शाम झुक जाती है।"

दूसरा बोला, "मेरे पास, साहब, क्या बताऊँ, ऐसे कपड़े नहीं क...."

तीसरा बोला, "मुझे तो, साहब, दफ़्तर से लौटकर बच्चों को सँभालना पड़ता है। महरी ने काम छोड़ दिया है। उन्हें ही अब घर-बासन भी करना पड़ता है।....क्या बतायें, कैसे नमकहराम हो गये हैं ये लोग ! गर्मी-बरसात में हमें महरी की बिलकुल ज़रूरत नहीं रहती, तो ये लोग हाथ जोड़ते हैं, 'बाबू, आप छुड़ा देंगे, तो हम का खायेंगे। यही तो हमारा सहारा है।' और जाड़ा आया नहीं, कि इनका दिमाग़ चढ़ जाता है। ये कम्बख़्त आँखें नहीं मिलाते, मोल सुनाते

हैं ! नमकहराम !........"

और जाने क्या हुआ कि राजा साहब अचानक अट्टहास कर उठे। लोग अचकचाकर उनकी ओर देखने लगे। लेकिन उनका अट्टहास रुकने का ही नाम ले रहा था। और फिर लोगों को भी जाने क्या हुआ कि वे भी हँसने लगे।

साँस फूल गयी और खाँसी ने जब ज़ोर मारा, तो राजा साहब रुके। फिर देर तक खाँसते रहे। रूमाल से मुँह, नाक, आँखें पोंछीं। फिर बोले, "साहब, माफ़ कीजिएगा। आपके साथ हमारी पूरी हमदर्दी है। हँसी आने की वजह दूसरी थी।"

"क्या वजह थी, साहब?" कई लोग बोल पड़े।

"इनकी बात सुनकर हमें अपनी एक नौकरानी की याद आ गयी। आप लोग चाहें, तो सुनायें, बड़ी दिलचस्प बात है।"

"ज़रूर, ज़रूर सुनाइए, साहब!—सब चिल्ला पड़े।

और राजा साहब ने कहानी शुरू की, "हम दो भाई हैं। मैं बड़ा हूँ। मैं बीस भी पूरे नहीं कर पाया था कि अचानक पिताजी का देहान्त हो गया। उस समय मैं कालेज में पढ़ रहा था। हमारे कारिन्दा एक मुंशीजी थे, बड़े ही विश्वासपात्र और स्वामीभक्त। उनकी राय थी कि मैं पढ़ना जारी रखूँ, वह सब सँभाल लेंगे। लेकिन माताजी इसके विरुद्ध थीं। उनका कहना था कि पढ़कर क्या होगा, मैं ज़मींदारी सँभालूँ। ज़माना बड़ा खराब लगा है। किसका मन कब डोल जायगा, कौन जानता है! सो पढ़ाई छोड़कर मैं ज़मींदारी सँभालने लगा। फिर बड़ी धूम-धाम से मेरी शादी हुई। छोटा भाई मेरा बड़ा प्यारा था। उसे मैंने एम० ए० तक पढ़ाया। फिर विदेश भेजनेवाला था। लेकिन तभी उसके साथ एक काण्ड हो गया। इम्तिहान देकर वह घर आया था। रिश्ते में एक शादी पड़ी थी। वह नवेद पर गया, तो वहाँ बारात में नाचने आनेवाली बनारस की एक मशहूर तवायफ़ पर दिल दे

बैठा। बहुत दिनों के बाद जब हमें मालूम हुआ, तो हमने सिर पीट लिया। माताजी, मुंशीजी और हमने उसे बहुत समझाया कि वह ख़ान्दान की नाक न कटाये, अपनी ज़िन्दगी बरबाद न करे। लेकिन तब तक पानी सिर से गुज़र चुका था। उसने किसी की बात पर कान न दिया। पन्द्रह दिन गाँव तो पन्द्रह दिन बनारस में उसका बीतता। तब माताजी ने उसकी शादी कर देने की ठान ली। पहले तो वह साफ़ इनकार कर गया। फिर इस शर्त पर मान गया कि वह तवायफ़ को रखेल बनाकर रख सकता है। माताजी से राय हुई, तो उन्होंने कहा, ख़ान्दान और दान-दहेज का ख़याल छोड़, बस इसकी कोशिश कर कि लड़की ऐसी सुन्दर मिल जाय कि यह तवायफ़ का जादू भूल जाय। मैंने खुद इसमें गहरी दिलचस्पी ली। भाई की ज़िन्दगी का सवाल था। बीसियों लड़कियाँ मैंने देखीं। और आख़िर लड़की तो मिल गयी, लेकिन ख़ान्दान न मिला। फिर ख़ूब धूमधाम से शादी हुई। और जैसा हमने सोचा था, सच ही भाई तवायफ़ को भूल गया!........इस उम्र की मुहब्बत!" और राजा साहब फिर अट्टहास कर उठे।

लेकिन लोगों ने अबकी हँसने में उनका साथ न दिया। एक बोला, "लेकिन आप तो कहानी अपनी किसी नौकरानी की कहनेवाले थे? यह........"

"आता हूँ, भई, आता हूँ!" राजा साहब ने आँखें पोंछकर कहा, "पहले कहानी की बुनियाद तो समझ लें।........हाँ, तो हम कामयाब तो हो गये, लेकिन इससे एक बात और भी पैदा हो गयी, और इसी बात ने हमारे ख़ान्दान की जड़ खोदकर रख दी। उसकी बीवी साधारण ख़ान्दान से आयी थी। वह मेरी बीवी से जलने लगी। या यों भी कह सकते हैं कि मेरी बीवी अपनी देवरानी को वह मान न दे सकी, जिसकी वह हक़दार थी, क्योंकि उसका ख़ान्दान उससे कहीं ऊँचा था। अब क्या था, घर में वह टंटा शुरू हुआ कि आख़िर हममें

अलग्योझा होकर रहा। माताजी बहुत दुखी हुईं। मुझे भी कम दुख न था। लेकिन दूसरा कोई चारा न था। अब सवाल उठा कि माताजी किसके साथ रहेंगी। वह हम दोनों को बराबर मानती थीं, फिर भी मैंने सोचा था कि वह हमारे साथ ही रहेंगी। कई दिनों तक वह चिन्ता में पड़ी रहीं। आखिर उन्होंने एक दिन फ़ैसला सुना दिया कि वह दोनों के साथ रहेंगी, यानी किसी के साथ नहीं रहेंगी। उनका हिस्सा भी अलग कर दिया जाय। अलग्योझे का एक दिन मुकर्रर किया गया। नाना और हम दोनों के ससुर बुलाये गये। उन्होंने जो फ़ैसला कर दिया, हमने मान लिया। तीन क़िता मकान थे। एक-एक हम लोगों को मिल गया। दीवान एक ही था, तै हुआ कि वह सबका साझा रहे। जायदाद बराबर-बराबर बाँट दी गयी। ज़ेवरात जो जिसके जिस्म पर थे, बहाल रखे गये। नक़दी का सवाल उठा, तो माताजी ने कहा कि जब तक वह जीवित हैं, वह उन्हीं के पास रहेगी। मरते वक्त वह उसका बाँट-बखरा लगा देंगी। यह हमें मान्य न था। लेकिन हमारे बुजुर्गों ने जब समझाया कि वह विधवा हैं, उनकी बात न मानी जायगी, तो जग हँसेगा, आखिर वह क्या करेंगी रुपयों का, सब तुम्हीं लोगों का तो है, माँ से रार बेसहना अच्छा नहीं, तो हम मान गये।

"चार साल तक सब ठीक-ठाक चलता रहा। मुंशीजी माताजी की जायदाद सँभालते थे। उनका कोई खर्चा न था। बस, रहतीं वह अपने मकान में थीं, खाना एक वक्त हमारे यहाँ खातीं, तो दूसरे वक्त भाई के यहाँ। कपड़े भी हमीं देते। उनके पास सिर्फ़ एक नौकरानी थी। वही उनका सारा काम सँभालती। माताजी ज़्यादातर अपना समय पूजा-पाठ में बितातीं। कोई-न-कोई धार्मिक अनुष्ठान वह बराबर नाधे रहतीं। हम दोनों भाई अपनी-अपनी तरह उन्हें खुश रखने की बराबर कोशिश करते।

"जेठ का महीना था। एक दिन आधी रात के समय माताजी

की नौकरानी ने हम-सब को जगाया। वह बहुत घबरायी हुई थी। उसने बताया कि माताजी ने उठकर पानी माँगा। वह पानी लेकर गयी, तो देखा, वह वह फिर लेट गयी थीं। उसने आवाज़ दी, तो कोई जवाब नहीं। बस हँफर-हँफर हाँफ रही थीं। उसका माथा ठनका। उसने मुँह टटोलकर देखा, तो दाँत लगे हुए थे। और वह भागी-भागी हमारे पास आयी थी। हमने जाकर देखा, तो माताजी बेहोश पड़ी थीं। कई बार पानी छिड़कने पर उन्होंने आँखें खोलीं, लेकिन फिर तुरन्त ही डूब गयीं। ऐसे ही रात बीत गयी। सुबह कस्बे के अस्पताल का डाक्टर बुलाया गया। दवा उनके मुँह में जा ही नहीं रही थी। सूई की दवा के लिए आदमी शहर दौड़ाया गया। पुरोहित-जी ने ग्रह बताया। गोदान कराकर वह दुर्गापाठ करने लगे। ब्राह्मणों और भिखारियों को अन्न-वस्त्र दान किया जाने लगा।

"ठीक चौबीस घंटे बाद वह होश में आयीं। डाक्टर ने बताया कि इनका दिल कमज़ोर है। हमें बराबर सावधान रहना चाहिए। मैं अलग से डाक्टर से मिला, तो उसने बताया, यह बड़ी मूज़ी बीमारी है। जाने कब दौरा आये और वह चल बसें।

"भाई भी शायद उनसे अलग से मिला था।....दानिशमन्दों के लिए इशारा काफ़ी है। आप लोग समझ गये होंगे कि अब हम दोनों भाई अपना-अपना दाँव खेलने लगे। माताजी के पास बड़ी गहरी रक़म थी। सारा पैतृक कोष उनके क़ब्ज़े में था। और अब हमारे दिलों में पाप बैठ गया था।

"मैंने दूसरे ही दिन अपनी एक बूढ़ी नौकरानी को माताजी के पास तैनात कर दिया। यह सबसे ज़्यादा चालाक और विश्वासपात्र नौकरानी थी। उसे मैंने अच्छी तरह समझा दिया कि उसके दो काम हैं, एक तो यह कि वह पता लगाये कि रक़म कहाँ है, और दूसरा यह कि माताजी को कुछ ऐसा-वैसा हो, तो सबसे पहले मुझे खबर मिले।....

तीसरे दिन यह देखा गया कि भाई की भी एक नौकरानी माताजी के पास रहने लगी।

"माताजी अब बहुत कम चलती-फिरतीं। रात-दिन अपने पलंग पर पड़ी रहतीं। यह पलंग उन्हें दहेज में मिला था। बहुत बड़ा और चेड़ा शानदार। उस पर चार गावतकिये और आठ छोटे-छोटे रेशमी रूई के तकिये रहते थे।

"तीन महीने के बाद उन्हें फिर दौरा आया। अबकी छत्तीस घंटे वह बेहोश रहीं।

"और दो महीने बाद जो फिर दौरा आया, तो माताजी हमेशा के लिए हमें छोड़ गयीं। सुबह भाई के घर रोने-धोने की आवाज़ सुनकर हमारी आँखें खुलीं। बात जब मालूम हुई, तो मुझे पहला धक्का यह लगा कि हमारी नौकरानी को क्या हुआ, उसने हमें खबर क्यों न दी! भागम-भाग पहुँचा, तो देखा, माताजी अपने शयन-कक्ष में पलंग पर निष्प्राण पड़ी थीं और हमारी नौकरानी उनके पास ही फ़र्श पर बैठी सिसक रही थी। मारे ग़ुस्से के मैं जल रहा था। चीखकर बोला, 'भगतिनिया, तूने हमें खबर क्यों नहीं दी?'

"वह बिलखकर रो पड़ी और हाय-हाय करती बोली, 'हम का करतीं, सरकार। छोटके बाबू हमार हाथ-गोड़ बाँध के, मुँह में लुग्गा ठूँस देले रहलन। सब माल-टाल लोग ढो चूकल हऽ तब जाके अभिहे थोड़े देर पहले तऽ हमके छोड़ल हऽ लोग।....'और उसने चारों ओर देखकर ऐसी आँख मारी कि मैं तो दंग रह गया। फिर उठकर खड़ी हुई और मेरे कान में फुसफुसाकर जो कहा, उससे मैं मान गया! फिर भी ग़ुस्सा बनाये रखना ज़रूरी समझ, बाहर निकलकर मैं चिल्लाने लगा, 'बहुत अच्छा किया, इन्दर, बहुत अच्छा किया! तुझे हमने बेटे की तरह पाला, और तूने हमारा ही हक़ मार लिया!....'

"लोगों की भीड़ जमा हो गयी। माताजी के घर में उनके पलंग,

बिस्तर और तकियों के सिवा कुछ भी नहीं था। मैं कहता था कि इन्दर सब उठा ले गया और इन्दर कहता था कि भैया सब उठा ले गये, उसे तो सुबह ही सब मालूम हुआ है। भगतिनिया की बात पर कोई विश्वास नहीं कर रहा था। मैं भी उसे ही डाँट रहा था, यह नमक-हराम बैठी-बैठी ताकती रही और इन्दर सब माल-मता ढो ले गया और मैंने उस बूढ़ी को तीन-चार झापड़ भी रसीद कर दिये और उसी वक़्त उसे ढकेलकर घर से बाहर भी कर दिया! वह चकित होकर मेरी ओर ताक रही थी। मैंने सोचा था कि बाद में उसे समझा देंगे कि मसलहत इसी में थी।

"सारे गाँव में थू-थू हो रहा था कि माँ की लाश घर में पड़ी है और बेटे माल-मता के लिए कुत्तों की तरह झगड़ रहे हैं। आख़िर मैंने ही सब्र किया और सब इन्तज़ाम करने में लग गया।

"अर्थी बाहर निकली, तो तकिये मैंने अपने घर भेजवा दिये।

"श्मशान से लौटकर आये, तो सुना कि भगतिनिया ने जाने क्या खा लिया है। उसकी हालत बहुत ख़राब है। मैं अशौच में था, फिर भी लपककर उसके पास गया कि कहीं मेरी बात उसे लग न गयी हो। वह मरणासन्न पड़ी थी। लोगों ने कहा कि राजा साहब आये हैं, तो उसने आँखें खोलीं और आँसू भरकर बस, इतना कहा, 'सरकार, हम नमकहराम नहीं!' और आँखें मूँद लीं। आँसू की लकीरें उसके पिचके, नीले पड़े गालों पर खिंच गयीं। उतने लोगों के सामने मैं उसे कैसे समझाता कि, नहीं, वह नमकहराम नहीं, उस वक़्त की यही मसलहत थी कि....और वह मर गयी।"

"मर गयी?" महफ़िल चीख़ उठी।

"हाँ," धीरे से राजा साहब बोले, "उसे मेरी बात ने मार डाला। वह नमकहराम नहीं, नमकहलाल थी। उसकी बात सच निकली थी। माताजी के तकियों में ही उनके सारे ज़ेवरात, मोहरें और नोटों के

गड्ढे थे।"

"ओह!" लोगों के मुँह से निकल गया, और जाने कैसी नज़रों से राजा साहब की ओर देखते लोग उठ खड़े हुए।

राजा साहब कहते रहे, "बैठिए, साहब, बैठिए!" लेकिन कोई रुका नहीं। महफ़िल उखड़ गयी। फाटक पर से लोगों के खँखारने और थूकने की आवाज़ें आयीं।

दूसरे दिन दफ़्तरों में राजा साहब की ही बातें होती रहीं—कैसा आदमी है! राम-राम!....

और फिर शामें बेरौनक़ हो गयीं। तश्तरी में पड़े पान सूखते रहते हैं। कोई आता नहीं।

राजा साहब अब भी सुबह फाटक पर दो पत्थर के शेरों के बीच टहला करते हैं। लोग आते हैं, जाते हैं, लेकिन उनसे आँखें नहीं मिलाते, उनकी आँखें इस या उस पत्थर के शेर पर अटकी रहती हैं।